आचार्य श्री तुलसी धवल समारोह के अभिनन्दन में

नैतिक संजीवन

प्रथम भाग

आचार्य श्री तुलसी

सम्पादक

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

प्रबन्ध सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा

उपमंत्री, अणुव्रत समिति, दिल्ली

आत्माराम एण्ड संस

दिल्ली ० जालन्धर ० जयपुर ० मेरठ

NAITIK SANJEEWAN

by

Acharya Shri Tulsi

Rs. 2.00

[श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा कलकत्ता के सौजन्य से प्राप्त]

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली
चौड़ा रास्ता जयपुर
माई हीरा गेट जालन्धर
बेगमपुल रोड मेरठ

आवरण
महेन्द्र कुमार भल्ला

मूल्य
रुपए २

मुद्रक
सुनील प्रेस
चावड़ी बाजार

आशीर्वचन

अन्त करण से स्फूर्त भावनाए ही साहित्य का रूप लेती हैं। नैतिक ऊर्ध्व सचार के लिए जो एक सयम-प्रधान आचार-सहिता प्रस्तुत की गई, उसे लोगो ने अणुव्रत-आन्दोलन कहा और उसी उद्देश्य से जो प्रेरक विचार मैं देता रहा, वह नैतिक सजीवन बनाया जा रहा है। मैं मानता हू कि यह सब वस्तु-वैशिष्ट्य का नही, किन्तु पात्र-परिणति का परिणाम है। मेघ के पानी मे स्वच्छता उसकी अपनी है, पर मुक्ता-परिणमन सूक्ति सम्पुट की अपनी पात्रता का फल है। मैंने कोई अनोखे विचार अपने भाषण मे दिये हो ऐसी बात नही। ये वही विचार थे जो भारतवर्ष के लोग अपने युगपुरुषो से समय-समय पर सुनते रहे हैं। उन्हे नैतिक सजीवन मानकर अपनाना उनकी आध्यात्मिक उर्वरता का द्योतक है।

मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम' अपनी हार्दिक लगन से उन विचारो के सकलन और सम्पादन मे लगा है, यह उसकी कर्तव्यपरायणता है। हर श्रेयोभिमुख प्रयत्न की मैं सफलता चाहता हू।

स० २०१७ माघ शुक्ल २
आमेट (राज०)

आचार्य तुलसी

सम्पादकीय

वर्णमाला के वर्ण परिमित है, पर कलाकार सयोजक उनमे अपरिमित भाव सजो देता है। आचार्य श्री का प्रत्येक प्रवचन इस सत्य का सुन्दर उदाहरण बनता है। वे प्रवचन उन्होने ग्रामीणो और श्रमिको मे भी दिये तथा ससद् सदस्यो और विश्वविद्यालयो के प्राध्यापको मे भी दिये। पात्र-भेद के कारण भाषणो के स्तर मे विविधता का आना स्वाभाविक और आवश्यक था, परन्तु किसी भी भाषण मे अर्थ-गरिमा ज्यो की त्यो सुरक्षित रही है।

भाव, भाषा और शैली से भी उच्चतर महत्त्व इन प्रवचनो मे इनके पीछे रही आचार्य श्री तुलसी की सुदीर्घ तप साधना का है और वही उन्हे श्रद्धावनत जन-मानस का अमर पाथेय बनाती है। सम्भव है, आज का एक पटु साहित्यकार महावीर और बुद्ध जैसी ही प्रशस्त भाव भाषा मे आध्यात्मिक उपदेशो को कह जाये, पर जन-मानस पर जो प्रभाव उनकी तप सिद्ध वाणी का पडेगा, वह साहित्यकार के कलापूर्ण शब्द-विन्यास का नही।

आचार्य श्री के प्रवचनो मे एक ओर विशुद्ध अध्यात्म का विलोडन है तो दूसरी ओर सामयिक समस्याओ का समाधान। विनाशक अस्त्र-शस्त्रो के निर्माण व सैनिक शक्तियो के सगठन से ही विश्व-शान्ति का स्वप्न देखने वालो के प्रति एक सात्विक प्रेरणा के रूप मे वर्तमान स्थितियो का चित्र प्रस्तुत करते हुए आचाय श्री तुलसी कहते हैं—सैनिक शक्ति और आणविक अस्त्रो की वृद्धि के उपरान्त भी भय घटा नही, प्रत्युत बढा और मानव जाति के प्रलय की कल्पना स्पष्ट हुई। तब उन लोगो को भी, जो एकमात्र शस्त्र में विश्वास करते थे, यह अनुभव हुआ है कि विवादो के अन्त का यह सही मार्ग नही है। पारस्परिक सौहार्द, विश्वास,

भाईचारा, सामीप्य और एक दूसरे की नीति एवं कार्यक्रमों का सम्मान करने से ही समस्याओं का समाधान हो सकता है। इस पद्धति के द्वारा ही मनुष्य मनुष्य की भांति जी सकता है। एक शब्द में यही कि आक्षेप पूर्ण प्रवृत्ति घट रही है, समझौता नीति विकसित हो रही है।

समाजवादी समाज-व्यवस्था व चारित्रिक व्यवस्था दोनों एक दूसरी से कितनी अपेक्षित है, इस विषय पर अपने एक प्रवचन में वे कहते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं कि अर्थ-व्यवस्था दोषपूर्ण होती है तब समाज में विकार बढ़ते हैं। अर्थ-व्यवस्था का परिवर्तन एक राष्ट्रीय प्रश्न है। राष्ट्रीय नेताओं के सामने अभी समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य है। अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है—चरित्रवान् समाज का निर्माण। अर्थ-व्यवस्था सुधरे बिना चरित्रवान् बनने में कठिनाई होती है तो चरित्रवान् बने बिना समाजवादी समाज बने यह भी सम्भव नहीं है।

तथाकथित धार्मिकों को जो केवल धर्म की रट ही लगाते हैं, उसे जीवन में नहीं उतारते, चुनौती की भाषा में कहते हैं—आज का वैज्ञानिक युग सिद्धान्त की अपेक्षा प्रयोग में अधिक विश्वास करता है। धार्मिक लोग प्रयोग कम करते हैं और सिद्धान्तों को अधिक दोहराते हैं। किन्तु आज का भौतिकवाद अध्यात्म को चुनौती दे रहा है उसे वे क्यों नहीं देखते। क्या वे अनीति, भ्रष्टाचार और धर्म को एक साथ चलाते रहेंगे? धर्म प्रधान देश में अनैतिकता क्यों? इस प्रश्न का समाधान किये बिना क्या धार्मिक लोग धर्म को आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बनाए रख सकेंगे? धर्म से वृत्तियों का परिमार्जन नहीं होता तो उसकी उपासना से और क्या मिल सकता है?

बहुधा व्यक्ति शान्ति को सुख-सुविधाओं में खोजता है। वह यह मानकर चलता है कि अभाव में शान्ति नहीं मिल सकती। किन्तु आचार्य श्री इस धारणा के विरुद्ध हैं। उनका कहना है—पहले सुख-सुविधा फिर शान्ति—ऐसा लगता है पर स्थिति ऐसी नहीं है। सुख सुविधा या आवश्यकता की पूर्ति जीवन-निर्वाह का सर्वोपरि साधन अवश्य है पर

शान्ति की पहली मंजिल भी नही है। सुख-सुविधा की सामग्री के परम-भाव मे भी बहुत सारे शान्ति के लिये मारे-मारे फिरते हैं। उनके अभाव मे प्रताडित व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त किये हुए हैं। इस पर से यह निकलता है कि सुख-सुविधा और शान्ति मे आपस मे कोई लगाव नही है, पौर्वापर्य या साहचर्य नही है। सुख-सुविधा होने पर भी शान्ति हो, ऐसी व्याप्ति या नियम भी नही है। इसलिए जीवन-निर्वाह या सुख-सुविधा की समस्या के समाधान के साथ शान्ति के प्रश्नो को नही जोडना चाहिये। उस पर स्वतन्त्र दृष्टि से विचार होना चाहिये।

सुख को पदार्थ-सापेक्ष मानना भूल है। वह यदि अभाव मे नहीं होता तो पदार्थों के अतिभाव मे भी नही होता। वह तो आत्मा का स्वभाव है। आचार्य श्री तुलसी इसी धारणा को तर्क का आधार प्रदान करते हुए कहते है—सुख का हेतु अभाव भी नही है और अतिभाव भी नही है। सुख का हेतु स्वभाव है। मनुष्य अपने स्वभाव से जितना दूर हटता है, उतना ही अतिभाव—पदार्थ का अतिसग्रह करने लगता है। पदार्थ से दूर हटने का मतलब है, स्वभाव की ओर गति। स्वयकृत अभाव मे स्वभाव का दर्शन निकट से होता है। अभाव विवशता से होता है। वह दु ख देता है। पदार्थ का अभाव हो, यह कोई कैसे चाहेगा ? अति-भाव की चाह होती है, पर वह करनी नही चाहिये। यथाभाव की क्षमता समाज-व्यवस्था मे है। जो नही होना चाहिये, उसके निवारण की क्षमता त्याग व व्रत मे है। अणुव्रत का सन्देश यही है—जो नही होना चाहिए उससे दूर रहो। यह व्यवस्थाओ की स्वय स्फूर्त व्यवस्था है। सुख का हेतु अहिसा या मैत्री है। उसका आधार अनपहरण है। जो व्यक्ति दूसरो के स्व का कभी हरण नही करता, वह सबका मित्र है। सुख की दृष्टि बाहरी पदार्थों से बधी हुई है, यह मानना भूल है। इससे मानसिक असमाधि बढती है।

आज का मनुष्य इतना बुरा क्यो हो गया, यह एक प्रश्न बहुधा सामने आता है। उत्तर भी स्पष्ट है कि मनुष्य एक साथ कभी बुरा नही

हुआ करता। उसमें असत् अंश है तो सत् अंश भी काफी मात्रा में विद्यमान है। उसका जो असत् है वह बाह्य भाग है और सत् उसका निजी स्वरूप। कई बार जब उसमें मद या स्वार्थ जागृत होता है सत् पर असत् छा जाता है और दुरात्मा कहने लगती है। असत् मनुष्य का बाह्य भाग है अत वह बुरा भी एक साथ नहीं बनता। उसका भी क्रम होता है। इस विषय में आचार्य श्री का कहना है—बुराई भी एक साथ नहीं आ जाती। उसका भी अभ्यास क्रम होता है। पहले पहल बुराई करते घृणा होती है दूसरी बार संकोच तीसरी बार निःसंकोचता आ जाती है और चौथी बार मे साहस बढ जाता है। फिर तो पाप का अभ्यास हो जाता है। अभ्यस्त व्यक्ति का त्याग सुलभ नहीं होता इसलिए भलाई का सहज प्रवाह नहीं होता।

कई एक व्यक्ति व्रत-ग्रहण करते ही अपने आप में पूर्णता का अनुभव करने लगते है किन्तु उनका यह मानना भ्रान्त है। वे व्यक्ति आगे चलकर स्खलित भी हो जाते है। व्रत क्या है और उन्हे क्यो ग्रहण करना चाहिये इस विषय पर आचार्य श्री कहते है—व्रत साध्य नहीं है। साध्य है—आत्मिक पवित्रता जीवन की शुद्धि। व्रत उसके साधन है। साधन को अपनाकर निश्चिन्त हो जाना उचित नहीं है। वे आगे बढने की प्रेरक पताकाए है प्रतिरोध के स्तम्भ नहीं। व्रती जो बने या बनते है वे सिर्फ बाहरी स्थितियो से दूर और पदार्थ से अलग हो न हो वे आन्तरिक वासनाओ से भी दूर रहने का अभ्यास बढाए। ऐसा हुए बिना त्याग व व्रत का यथेष्ट परिणाम नहीं आता। ऊपर त्याग हो जाता है और अन्दर वासनाओ का भेद नहीं होता वैसी हालत मे वे मार्गान्तर या रूपान्तर से प्रकट होती है। फिर त्याग में मलिनता निखरती है, यह वांछनीय नहीं।

आचार्यप्रवर की वक्तृत्व शैली स्वतःसिद्ध है। आचार्यावस्था से पूर्व भी इसने आपको बहुत गौरवान्वित किया था। तेरापंथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के सम्मुख प्रमुखतया आप ही व्याख्यानदाता रहे है। २२ वर्ष की अवस्था में आप आचार्य बन गए। तब से तो आपकी

वक्तृत्व शैली ही योग्य आचार्य की परिचायक बन गई। एक बार आपका व्याख्यान सुन लेने वालो के हृदय मे अल्प वयस्कता और आचार्य पद सम्बन्धी प्रश्न शान्त हो जाते और आपकी वक्तृत्व शैली दैवी सपद बन जाती है। क्रमश प्रभावित जनता के उद्‌गार प्रस्तावो मे बदलने लगे। चारो ओर से सुझाव आने लगे—इन अमूल्य भाषणो का यथासमय सकलन क्यो नहीं कर लिया जाता। वही लोक-भावना कार्यरूप मे परिणत हुई। नाना सस्थाओ ने इस ओर ध्यान दिया। नाना साधु इस कार्य मे जुटे। इन सबमे एक मैं भी था। भाषण सगृहीत होने लगे और नाना पत्र-पत्रिकाएँ उनका उपयोग करने लगी। प्रवचनो के अनेको पुस्तकाकार सकलन भी बने और बनते जा रहे हैं। क्रमिक विकास के इस इतिहास मे नैतिक सजीवन एक नया अध्याय है।

सात खण्डों मे सोचे गए इस प्रवचन सग्रह की भूमिका आगामी वर्ष का तुलसी धवल समारोह है। आचार्यवर के कलकत्ता चातुर्मास (वि० सवत् २०१६) में मुनि श्री नगराजजी व साहित्यचेता शुभकरणजी दशानी के बीच आचार्य पदारोहण के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष मे सभाव्यमान तुलसी धवल समारोह के विषय मे चिन्तन चला। अन्यान्य कार्यक्रमो के साथ आचार्यवर की कृतिया तथा भाषणो का सम्यग् सम्पादन तथा ऐतिहासिक यात्राओ का लेखन अपेक्षित माना गया। आचार्यवर का आशीर्वाद पाकर मैं इस कार्य मे जुटा। नैतिक सजीवन के प्रथम खण्ड का सम्पादन मेरे लिए हर्ष का विषय है कि मैं अपने लक्ष्य की ओर एक डग भर सका।

प्रस्तुत प्रथम भाग मे अणुव्रत-आन्दोलन के वार्षिक अधिवेशनो मे आचार्यप्रवर द्वारा प्रदत्त मगलप्रवचन व दीक्षान्त प्रवचन है। इनके साथ-साथ कुछ विशेष सन्देश व प्रवचन भी हैं, जो समय-समय पर अणुव्रत प्रेरणा दिवस व अन्य विशिष्ट अवसरो पर प्रदान किये गए हैं। इन प्रवचनो मे आन्दोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि व उससे सम्बन्धित अनेको प्रश्नो का सुन्दर समाधान है। इनमे से कुछ विशेष प्रवचन मुनि श्री

मयमसजी द्वारा संगृहीत हैं। शेष प्रवचन नाना हाथों से संकलित हुए हैं। उन्हें बहुत ध्यान से देखना पड़ा है तथा अनेकानेक स्थलों पर संशोधन व भाषा का परिमार्जन भी किया गया। इस संग्रह में सातवें अधिवेशन का प्रवचन तो उपलब्ध ही नहीं हो पाया है। कुछ प्रवचन अति संक्षिप्त हैं और कुछ विस्तृत। अत्यधिक खोज करने पर भी कुछ प्रवचनों की तिथियां भी प्राप्त न हो सकी हैं अतः उन्हें इसी तरह देना पड़ा है। विचारों की पुनरावृत्ति न हो इसके लिए सावधानी बरती गई है फिर भी कहीं-कहीं अत्यन्त आवश्यक समझकर उस पुनरावृत्ति को भी रहने दिया गया है।

प्रस्तुत कार्य में मुनि श्री नगराजजी का सतत मार्ग-दर्शन मुझे मिलता रहा है और उसी का परिणाम है कि यह कुछ बन पाया है। प्रस्तुत पुस्तक में सम्पादन का जो कुछ भी सौष्ठव है, वह मेरा नहीं अपितु मुनि श्री के मार्ग-दर्शन का ही है। पाठक यदि इस संग्रह से कुछ भी धर्माभिमुख होंगे तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा।

जून १९५१
रुठीतिया भवन
सब्जीमण्डी दिल्ली

—मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

: १ :

धर्म का पहला सोपान

दुनिया की वार्तमानिक स्थितियो के अध्ययन और विश्लेषण के बाद मै इस
र्ष पर पहुचा हू कि कोरा ज्ञान भयावह है, कोरा भौतिक विकास प्रलय है
नियन्त्रणहीन गति खतरा है। विशुद्ध जीवन की धुरी है दृष्टि। दृष्टि
होती है तो ज्ञान शुद्ध होता है, चरित्र शुद्ध होता है। दृष्टि विकृत होती
ो ज्ञान विकृत हो जाता है, चरित्र विकृत बन जाता है। आज का मनुष्य
ट दोष से बुरी तरह ग्रस्त है। अपने को सुसभ्य मानने वाले गोरे आदमी
ा आदमियो को जिस घृणा की दृष्टि से देखते है, वह क्या दृष्टि-दोष नही
' किसी के प्रति घृणा करने वाला क्या सबके प्रति घृणा नही करता ?
ा के सस्कार जो बन जाते है, वे क्या सीमित ही रहते है ? यही तो दृष्टि-
ा है कि मनुष्य घृणा का आरम्भ किसी दूसरे से करता है और वह चलते-
ते अपनो तक तथा अपने तक पहुच जाती है।

अपने को उच्च मानने वाले दूसरो को नीच मानकर उनमे घृणा करते है,
ा यह दृष्टि-दोष नही ? इसके फलस्वरूप होने वाले समाज-विघटन से क्या
अपने को बचा सकेंगे ? मनुष्य-मनुष्य के प्रति घृणा करे, इससे बढकर और
मनुष्यता क्या होगी ?

भाषा, प्रान्त, राष्ट्रीयता, जातीयता और साम्प्रदायिकता का व्यामोह दृष्टि-
ोष नही तो क्या है ? सुसभ्य राष्ट्र अणु-अस्त्रो के स्वार्थों मे लगे हुए है।
कन्तु वे नही सोचते कि सुन्द और उपसुन्द लडेंगे तो उनमे बचेगा कौन ?
जसके लिए लडाई है, उसे कौन भोगेगा ? इस पर दृष्टि नही दौडती, क्या
यह दृष्टि-दोष नही है ? छुट-पुट दृष्टि-दोष कितने हैं, कौन जाने ? पर घृणा,
सकीर्ण मनोवृत्ति और पारस्परिक अविश्वास—ये बड़े भयावने दृष्टि-दोष हैं।

इसका परिमार्जन हुए बिना ज्ञान और चरित्र दोनों पवित्र नहीं बनेंगे। अणुव्रत या शोधन का ध्येय यही है कि दृष्टि-दोष मिटे, समभाव का विकास हो, मनुष्य मनुष्य की भिन्नता से हटे; वर्ण, जाति, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय और राष्ट्र का भेद उनके बीच में न आए। विचारों की इस पृष्ठभूमि पर पहुंच कर ही अणुव्रत आन्दोलन की आत्मा को पकड़ा जा सकता है। व्रतों का आन्दोलन कठिन होता है, यह मैं मानता हूं, पर साथ-साथ यह भी मानता हूं कि उस बिना कठिनाइयों का पार नहीं पाया जा सकता।

आज का दृष्टिकोण प्रेम, उदार मनोभाव तथा विश्वास से उतना विपन्न नहीं है जितना धार्मिक सिद्धान्त से चिपटा हुआ है। धर्म जीवन की प्रथम आवश्यकता है यह मानते हुए भी यह कौन नहीं मानेगा कि प्रेम, अभय, मैत्री, शान्ति और विश्वास जीवन की प्रथम आवश्यकताएं नहीं हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन के विचार प्रसार के लिए मैंने कई बड़ी-बड़ी यात्राएं की हैं। जनता ने आन्दोलन की भावना को समझा है। परन्तु विचार और आचार में जो दूरी रही है वह आज भी है। आन्दोलन आज भी आवश्यक है और वह तब तक आवश्यक है जब तक व्यक्ति उपशान्तमोह नहीं होता है, उसमें स्वशासन का भाव जागृत नहीं होता है।

पिछले दो वर्षों में हमने मिलावट, रिश्वत और मद्य का निषेध — इस त्रिसूत्री कार्यक्रम को प्रसारित किया। मद्य न पीने की हजारों प्रतिज्ञाएं हुईं। मिलावट न करने और रिश्वत न लेने की प्रतिज्ञाएं कम हुईं। व्यापारी और राज्य कर्मचारी जब अपनी कठिनाइयां प्रस्तुत करते हैं तब लगता है कि वे मिलावट न करें, रिश्वत न लें तो उनकी गृहस्थी कैसे निभे? किन्तु थोड़े गहरे में जाएं तो स्पष्ट दीखता है कि इस प्रकार एक समस्या को निपटाने के लिए वे अप्रामाणिक बनते हैं और अपने लिए उससे बड़ी अनेक समस्याओं की सृष्टि कर लेते हैं। यह दृष्टि दोष मिट जाए तो व्यवहार की सचाई को विकसित होने से रोकना सम्भव कहां?

भारतीय लोग धर्म और दर्शन की गहरी चर्चाएं करते हैं पर धर्म का पहला सोपान है—व्यावहारिक सचाई, प्रामाणिकता। वह जीवन में न हो तो हम कहां से पायेंगे कैसे पायेंगे? अणुव्रत का स्वरूप जितना धार्मिक है

उतना ही व्यावहारिक है। धर्माचरण का असर जितना व्यक्ति पर होता है, उतना ही समाज पर होता है। अनैतिकता को त्यागने का जितना असर व्यक्ति पर होता है उतना ही समाज पर भी होता है, इसलिए वह धार्मिक भी है और व्यावहारिक भी।

भारत धर्म-प्रधान देश कहलाता है, पर व्यावहारिक सचाई में यह बहुत पीछे है। भारतीय लोग विदेश-यात्रा से लौटते हुए उन राष्ट्रों की प्रामाणिकता की प्रशंसा करते हैं, जिन्हें भारतवासी भौतिकवादी राष्ट्र मानते हैं। विदेशी लोग जो भारत की यात्रा में आते हैं, उन्हें यहां की ऊंची दार्शनिकता के प्रकाश में प्रामाणिकता का अभाव खलता है। इस स्थिति के विश्लेषण से यह जान पाया हूं कि यहां धर्म जीवन-शुद्धि के लिए नहीं, पुनर्जन्म की शुद्धि के लिए है। वे भूल जाते हैं— वर्तमान जीवन शुद्ध नहीं हुआ तो अगला जन्म शुद्ध कैसे होगा? मैं सभी धर्म-प्रमुखों, धर्म-पण्डितों व धर्म-प्रचारकों से अनुरोध करूंगा कि वे उपासना की अपेक्षा जीवन की सचाई को प्राथमिकता दें। इसका परिणाम धर्म-संस्थानों के लिए बहुत श्रेयस्कर होगा और धर्म का माहात्म्य बढ़ेगा।

अणुव्रती जो बने हैं, वह अच्छी बात है। उनकी जीवन-यापन की पद्धति अणुव्रती जीवन के अनुरूप बनी हो, ऐसा पर्याप्त मात्रा में नहीं हुआ है। अणुव्रती सोचें, वे जागृत अणुव्रती बनें। अणुव्रतों के स्वीकार से उनमें क्या परिवर्तन आया और उनके अणुव्रती बनने से आन्दोलन को क्या बल मिला, इस पर चिन्तन करें। सही अर्थ में अणुव्रती बनने में जो कठिनाइयां हैं, उनके निवारण का वे प्रयत्न करें। आन्दोलन का प्रसार-कार्य, जो बहुलांश में साधुओं पर ही छोड़ रखा है, सम्पन्न करने का संकल्प लें। अणुव्रतियों में भले ही वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, एकत्व का अनुभव करें।

आज संसार को जिसकी आवश्यकता है, वह है मानसिक सन्तुलन। उसकी पूर्ति व्रत से ही सम्भव है। मुझे विश्वास है, अणुव्रती और उनके सहयोगी इस पर गम्भीरता से चिन्तन करेंगे।

[१ अक्टूबर, १९६० को राजनगर (राजस्थान) में अणुव्रत-आन्दोलन के ग्यारहवें वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

: २ :

कर्तव्य पूर्ति के लिए नया मोड़ आवश्यक

समझौता नीति का विकास

अणुव्रत-आन्दोलन दस वर्षों की अवधि को पार कर चुका है। इस लम्बे समय में विश्व के रंगमंच पर छोटे-बड़े अनेकों परिवर्तन हुए हैं व अनेक घटनाएं घटी हैं। विज्ञान की चामत्कारिक प्रगति हुई है। सामाजिक विकास आर्थिक उन्नति सम्पदा के संवर्धन की होड़ में प्रत्येक राष्ट्र तत्परता से सक्रिय है। शक्ति-सन्तुलन के लिए शस्त्रास्त्रों के निर्माण की स्पर्धा भी कम नहीं रही है। शीत-युद्ध भी तीव्र गति से चला है। थोड़ी मात्रा में प्रत्यक्ष युद्ध भी हुआ है और कुछ प्रसंगों में वह होते-होते बचा भी है। इन घटनाओं को मिला कर देखा जाये तो लगता है कि हिंसा की सीमाएं विस्तृत हुई हैं।

सैनिक शक्ति और आणविक शस्त्रों की वृद्धि के उपरान्त भी भय घटा नहीं, प्रत्युत बढ़ा और मानव जाति के प्रलय की कल्पना स्पष्ट हुई। तब उन लोगों को भी जो एक मात्र शस्त्र में विश्वास करते थे यह अनुभव हुआ है कि विवादों के अन्त का यह सही मार्ग नहीं है। पारस्परिक सौहार्द विश्वास भाईचारा सामीप्य और एक-दूसरे की नीति एवं कार्यक्रमों का सम्मान करने से ही समस्याओं का समाधान हो सकता है। इस पद्धति के द्वारा ही मनुष्य मनुष्य को शान्ति दे सकता है। एक शब्द में यही कि आवेशपूर्ण प्रवृत्ति घट रही है, समझौता-नीति विकसित हो रही है।

चरित्र के साथ

यह जो हुआ है वह अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा हुआ है ऐसी अत्युक्ति मैं नहीं कर सकता। किन्तु जो हुआ है, उसका आशीर्वाद यह अवश्य है क्योंकि यह उसके लक्ष्य की पुष्टि है। आन्दोलन का लक्ष्य है—चरित्र-विकास।

चरित्र का सम्बन्ध केवल व्यापार-शुद्धि तक ही सीमित नही है। उसका सम्बन्ध उन सब कार्यों से है, जो मनुष्य को हिंसक बनाते है। खाद्य पदार्थों मे मिलावट करने वालो को यदि चरित्रवान् नही कहा जा सकता, तो आणविक अस्त्रो का निर्माण करने वालो को भी चरित्रवान् नही कहा जा सकता। शोषण, अन्याय, असहिष्णुता, आक्रमण, दूसरो के प्रभुत्व का अपहरण या उसमे हस्तक्षेप और असामाजिक प्रवृत्तिया, ये सब चरित्र के दोष है। लगभग सभी लोग इनसे आक्रान्त है। भेद है, मात्रा और प्रकार का। कोई एक प्रकार के दोष से आक्रान्त है तो कोई दूसरे प्रकार के दोष से, कोई कम मात्रा मे है तो कोई अधिक मात्रा मे। अभी मेरे सामने भारतीय नागरिक है। उनमे असहिष्णुता, आक्रमण, दूसरो के प्रभुत्व का अपहरण या उसमे हस्तक्षेप, इन दोषो की मात्रा विशेष नही है। किन्तु शोषण और असामाजिक प्रवृत्तिया की मात्रा उनमे अधिक है। व्यावहारिक सचाई जितनी कई दूरवर्ती राष्ट्र के नागरिको मे है, उतनी भारतीय नागरिको मे नही है। यद्यपि आसपास की आलोचना मे कुछ कष्ट होता है, पर उसे मिटाने के लिए सही निदान के अतिरिक्त और उपाय भी तो नही है। अणुव्रत-आन्दोलन की अधिक शक्ति जीवन-व्यवहार के असदाचार को मिटाने मे लगी है। आन्दोलन ने छोटी छोटी बुराइया की ओर जनता का ध्यान खीचा है। कुछ बुराइया को लोग बुराई मानना भूल गये थे, उन्हे फिर से भान हुआ है और वे बुराई को बुराई समझने लगे है, यह आन्दोलन की सफलता है। बुराइयो को छोडने मे जितनी अपेक्षा थी, उतने लोग सम्मिलित नही हुए है, यह आन्दोलन की असफलता है। असफलता का एक हेतु आर्थिक दुर्व्यवस्था हो सकती है, पर इसके अतिरिक्त कुछ और भी है। चारित्रिक आन्दोलन इसलिए पूर्ण सफल नही होते कि जो और है, उसे महत्त्व नही दिया जाता, सारा महत्त्व अर्थ व्यवस्था को दिया जाता है। इसमे कोई सन्देह नही कि अर्थ-व्यवस्था दोषपूर्ण होती है, तब समाज मे विकार बढते है। अर्थ-व्यवस्था का परिवर्तन एक राष्ट्रीय प्रश्न है। राष्ट्रीय नेताओ के सामने अभी समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य है। अणुव्रत-आन्दोलन का लक्ष्य है, चरित्रवान् समाज का निर्माण। अर्थ-व्यवस्था सुधरे विना चरित्रवान् बनने मे कठिनाई होती है तो चरित्रवान् बने विना समाजवादी समाज बने, यह भी सम्भव नही है। इसलिए मै बहुधा राष्ट्र के

प्रमुख व्यक्तियों से कहता हूँ कि वे और और भावनाओं के साथ चरित्र विकास को भी महत्त्व दें। भारत में अब भी ऐसा मानस है कि वह विश्व को शान्ति, सामंजस्य और सह-अस्तित्व की अमूल्य देन दे सकता है। अणुव्रती इस देन को स्थिर बनाये रखते हैं। वे समाज के अंग हैं। अर्थनीति व राजनीति से वे जुड़े हुए हैं। उनके विश्लेषण से बच कर रहना सदा कठिन है। मनुष्य की पूर्ति के लिए उन्हें नया मोड़ देना आवश्यक है। आत्मानुशासन की भावना लोगों तक पहुँची है, प्रभाव हुआ है, पर क्रियात्मक रूप की अपेक्षा अधिक है। अणुव्रती अभी परिनिष्ठित नहीं बने हैं। वे जनता का ध्यान इस पर खींचने के लिए सीख न पाये हैं। जो सहते हैं उनका मार्ग कठिन है। और यह भी हो सकता है कि उस मार्ग पर उनके साथ चलना चाहिए। कम से कम बढ़ न सके पाते हैं। पर वे प्रारम्भ निश्चित कर रहे हैं।

सत्य, अपरिग्रह व स्वावलम्बन का बीज अहिंसा

यह बहुत ही श्रेय है कि सब लोग अणुव्रती बन जाएं। किन्तु यह भी इस श्रेय नहीं है कि हमारे ये लोग केवल अणुव्रती हों। अणुव्रती से मेरा मतलब है — चारित्रिक मानदण्ड को प्राथमिकता देने वाले व्यक्ति। आज ऐसे लोगों की कमी हो रही है। उसका कारण भी स्पष्ट है। नई पीढ़ी को प्रारम्भ से ही बौद्धिक विकास की शिक्षा मिलती है। चारित्रिक मूल्यों के प्रति उनकी आस्था बढ़ाने का यत्न नहीं किया जाता। बौद्धिक विचारों के पनपने पर आध्यात्मिक विचार बहुत कम हो पाते हैं। और मानसिक स्थिति सुदृढ़ बने बिना नैतिकता भी नहीं पनप पाती। कुछ राष्ट्रों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुई है। राष्ट्रीय भावना से नैतिक विकास को भी प्रोत्साहन मिला है। पर उससे नैतिकता का एकांगी विकास हुआ है। हम उसका सर्वांगीण विकास चाहते हैं। वैयक्तिक व्यवहार में भी नैतिकता हो और सब राष्ट्रों के प्रति या बड़े-बड़े कार्यों में भी नैतिकता हो। इसका आधार अहिंसा ही बन सकती है। अहिंसा और आध्यात्मिकता में कोई भेद नहीं है। जब तक जीवन में अहिंसा नहीं आती, सबको समान मानने की भावना विकसित नहीं होती, तब तक सत्य का भी आचरण नहीं होता। सत्य, अपरिग्रह, स्वावलम्बन इन धर्मों का बीज अहिंसा है। अहिंसा की प्रतिष्ठा संयम से ही हो सकती है। बौद्धिक

विकास के साथ सयम की शिक्षा मिले, वैसा शिक्षा-प्रयोग सम्भव नही हो रहा है। अणुव्रती का जीवन एक प्रयोगशाला जैसा होना चाहिए। नये-नये प्रयोग ही कार्य को आगे बढाते है। कार्य-क्षेत्र बहुत विशाल है। कमी है—कार्य करने वाले व्यक्तियो की। व्यक्तियो का निर्माण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। ऐसे व्यक्ति बहुत कम तैयार किये जा सके है, जो इस ज्योति को सुदूर तक फैला सकें। व्यक्ति तब बनता है, जब उसका कोई निश्चित लक्ष्य हो, उसकी पूर्ति की तडफ हो और उसका आग्रह हो। रीति-रिवाज, आचार व्यवहार और परम्पराओ मे सयम हो, सादगी हो, सरलता हो, यह एक लक्ष्य है। इसकी पूर्ति की तडफ और आग्रह पैदा कर सके तो व्यक्ति-निर्माण की दिशा मे एक सफल प्रयत्न होगा।

दूसरा दशक

आन्दोलन का दूसरा दशक अधिक सम्भावनाओ के साथ शुरू हो रहा है। विचार-पक्ष जो बना है, उसकी आचार मे परिणति होगी, ऐसा विश्वास है। ऐसा न हो तो कोरे दार्शनिक सिद्धान्तो मे होना जाना भी क्या है? इस चातुर्मास मे अणुव्रती समाज-व्यवस्था के बारे मे लम्बा चिन्तन चला है। कुछ निष्कर्ष भी सामने आये है। अ० भा० अणुव्रत समिति एक ऐसे शिक्षा-सस्थान की बात सोच रही है, जहा जनता को बौद्धिक और चारित्रिक शिक्षाए साथ साथ मिलें और जहा से अर्थनीति, राजनीति एव समाज की परम्पराओ को अहिंसात्मक पथ-प्रदर्शन दिया जा सके। चरित्र-विकास के उपदेश प्रयोगात्मक शिक्षा के बिना पूर्ण सफल नही हो सकते।

बगाल की इस सुदीर्घ यात्रा के बाद लोगो तक भावना पहुचाने का क्रम एक प्रकार से पूर्ण होता है। अब दूसरे क्रम पर अधिक ध्यान देना है। अणुव्रत-आन्दोलन के कार्यकर्ता और उसके प्रशासक इस पर गहराई से विचार करें।

[१६ अक्टूबर, १६५६ को कलकत्ता (पश्चिमी बगाल) मे अणुव्रत-आन्दोलन के दशम वार्षिक अधिवेशन मे प्रदत्त मगल प्रवचन]

२

पांच साधनों की साधना

समय की अवधि होती है इसीलिए कोई भी अनुष्ठान आरम्भ और अन्त से मुक्त नहीं होता। निष्ठा ही एक ऐसी वस्तु है जिसका अन्त नहीं होता।

निष्ठा को पाना सहज बात नहीं है। पर जिसमें निष्ठा होती है वह कुछ कर गुजरता है। सफल का अर्थ है निष्ठावान् और निष्ठावान् का अर्थ है सफल। प्रत्येक संस्थान को निष्ठावान् व्यक्तियों की अपेक्षा होती है। अणुव्रत-आन्दोलन भी निष्ठावान व्यक्ति चाहता है। निष्ठा में 'करो या मरो' के सिवाय दूसरा विकल्प नहीं होता। सत्य की सिद्धि के लिए जिसमें मृत्यु का वरण करने की उमंग हो वह जीता है और उसकी निष्ठा जीती है।

आज का वैज्ञानिक युग सिद्धान्त की अपेक्षा प्रयोग में अधिक विश्वास करता है। धार्मिक लोग प्रयोग कम करते हैं और सिद्धान्तों को अधिक दोहराते हैं। किन्तु आज का भौतिकवाद अध्यात्म को चुनौती दे रहा है उसे वे क्यों नहीं देखते? कब तक अनीति, भ्रष्टाचार और धर्म को एक साथ चलाते रहेंगे? धर्म प्रधान देश में अनैतिकता क्यों? इस प्रश्न का समाधान किये बिना क्या धार्मिक लोग धर्म को आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनाये रख सकेंगे? धर्म से वृत्तियों का परिमार्जन नहीं होता तो उसकी उपासना से और क्या मिल सकता है? धर्म का वर्तमान में क्या उपयोग है? धार्मिक का जीवन कितना स्पष्ट होता है? अणुव्रती इसका उदाहरण उपस्थित करें।

वे मृदु हों। दूसरों के प्रति अन्याय और शोषण करने का प्रमुख हेतु क्रूरता है। सब जीव समान हैं यह मानकर चलने वाले दूसरे मनुष्यों के प्रति क्रूर व्यवहार करें यह कितना आश्चर्य है।

अणुव्रती सहिष्णु हों—असहिष्णुता से कलह होता है, मनस्ताप होती है

और युद्ध होते है। सहिष्णु व्यक्ति प्रत्येक अप्रिय परिस्थिति को टाल देता है। जो सहन करने का मन्त्र नही जानता, वह शान्ति से जी नही सकता।

अणुव्रती नम्र हो—उद्दण्डता से व्यक्ति बहुत नीचे स्तर पर चला जाता है। विनय अपना सहज गुण है। जो नम्र होता है, वह सहज ही दूसरो को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

अणुव्रती समभावी हो—उनमे घृणा न हो। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति घृणा का मनोभाव रखे, यह कितनी दयनीय मनोदशा है। प्रेम का अभाव होता है, तभी घृणा बढती है। प्रेम का विस्तार होने से ही घृणा मिट सकती है।

अणुव्रती स्वावलम्बी बनें—दूसरो पर निर्भर रहन वाले व्रतो को निभाने मे कठिनाई अनुभव करते हैं। अपन प्रयत्नो मे भरोसा रखने वाला विलासी नही बनता।

ये पाचो बातें आन्दोलन के व्रता मे है। किन्तु व्रत लेने मात्र से वे सफल नही होती। उनकी सफलता के लिए उनकी उपासना करनी होती है। एक साथ सारे व्रतो की उपासना कोई कर सके तो बहुत अच्छी बात है, पर वैसा करना कठिन है। मै अणुव्रतियो को परामर्श देता हू कि वे इस वर्ष इन पाच साधनो की साधना करें।

साधना का क्रम यह हो कि वे इन पाच बातो के अभ्यास का दैनिक लेखा-जोखा रखें। पाच अको की कल्पना करे और किस दिन कितने अक प्राप्त होते है, इसका स्वय ध्यान रखें। अगले अधिवेशन पर उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें।

दूसरो के लिए खपे बिना कोई भी उनके हृदय को नही छू सकता। आन्दोलन की भावना तब तक यथेष्ट प्रसार नही पा सकती, जब तक दूसरो के लिए कुछ न किया जाये। परन्तु दूसरो के लिए करने की क्षमता उन्ही मे हो सकती है, जो अपने लिए कुछ करें, अपने आपको खपायें, तपायें। मै विश्वास करता हू कि अणुव्रतियो मे कार्य करने की तडफ जागेगी और अगले वर्ष तक उसका परिणाम अवश्य ही प्रत्यक्ष होगा।

[१८ अक्टूबर १९५९ को कलकत्ता (पश्चिमी बगाल) मे अणुव्रत-आन्दोलन के दशम वार्षिक अधिवेशन मे प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

४

आचार संहिता की आवश्यकता

अणुव्रत साधना का पथ है। साधना के इस पथ को अब हम व्यापक बनाना चाहते हैं, तब यह पथ आन्दोलन का रूप ले रहा है। इस आन्दोलन का उद्देश्य है जन-जीवन संयमित बने, उसमें संयम आये। 'संयमः खलु जीवनम्' के घोष के पीछे भी यही भावना छिपी है।

भारतीय संस्कृति का मानव-दर्शन की यही विशेषता रही है कि मानव स्वयं पर स्वयं संयम करना सीखे। स्वयं ही स्वयं पर संयम करने की विशेषता केवल मानव में ही रही है अन्य किसी में नहीं। भारतवर्ष में सदा से ही संयमशील मनुष्य को ही प्रधानता दी गई है। वैसे जन्म से मनुष्य न प्रधान है और न अप्रधान। संयम करने पर प्रधान हो जाता है और संयम के अभाव में अप्रधान या गौण। प्रधानता कोई भौतिक या आकार वस्तु नहीं। प्रधानता व्यक्ति का निज का रूप है, उसका स्वयं का तत्त्व है। कौन व्यक्ति कितना आत्म-तुष्ट है यही प्रधानता की कसौटी है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—असन्तोषी व्यक्ति चाहे चक्रवर्ती सम्राट् हो, पर वह सुखी नहीं होता।

आज प्रत्येक व्यक्ति अपने को तोले। धनी से धनी और निर्धन से निर्धन कोई सुखी नहीं दीख पड़ता। जो जितना धनी है वह उतना ही असन्तुष्ट है। सबसे अधिक सन्तुष्ट वही है जिसके पास कुछ भी नहीं।

संयम जीवन का क्रियात्मक पक्ष

आत्मतोष का एकमात्र मार्ग आत्म-संयम है। दोनों का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। लोग संयम को निषेधात्मक मानते हैं पर यह जीवन का सर्वोपरि क्रियात्मक पक्ष है। यद्यपि असंयम स्वीकारात्मक है पर वह जीवन का विध्वंस

करने वाला है, जबकि सयम अस्वीकारात्मक होते हुए भी निर्माणात्मक पक्ष है।

देश की अन्तरात्मा का निर्माण राष्ट्रीय चरित्र और सयम से होता है। आज मनुष्य सग्रह के पीछे दौडता है। यदि वह ज्ञान, विचारो और सदगुणो का सग्रह करे तो कोइ हर्ज नही, पर आज पदार्थ और सत्ता ही सग्रहणीय बन गई है। इसका सग्रह भी कौशल व चातुर्य की अपेक्षा रखता है, इसलिए यह प्राप्त भी सबका नही होता। जिनमे सत्ता या पदार्थ के सग्रह का कौशल है, यदि वे इससे विमुख हो जाते है तो उनकी प्रधानता है, विशेषता है। लालसाओ की धधकती आग मे वे स्वय तो बचेगे ही, विश्व को भी बचा सकेगे। समाज की अनुकरणीय दशा होती है। जैसा बडे लोग करते है उन्ही का अनुकरण सामान्य लोग करने लगते है।

उद्धार के लिए कौन-सा भगवान् आयेगा ?

आज समूचे समाज मे अनैतिकता की महामारी, नीति-भ्रष्टता की प्लेग फैली हुई है। 'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्' कह कर हम अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा नही पा सकते। हमारा उद्धार करने के लिए कौन-सा भगवान आयेगा ? हमे ही परमात्म रूप धारण करना है। अपनी जिम्मेदारी से बेखबर होना, आज का सबसे बडा खतरा है। इसके परिणाम भी भयकर होते है।

समाज और राजनीति जिम्मेदार

आज के इस पतनोन्मुख वातावरण मे सर्व-कर्म-मुक्ति की बात बहुत दूर है। फिर भी सब चाहते है कि अनैतिकता का यह आतक किसी तरह से मिट जाये। इसको प्रश्रय देने की जिम्मेदारी दो पर है—समाज पर और राजनीति पर। समाज आज शृ खला-विहीन व नीति-भ्रष्ट हो रहा है। अत समाज के लोगो के लिए एक आचार-सहिता बने जो सबको मान्य हो सके। अन्यथा चाहते हुए भी लोग कुरीतियो के दलदल से बाहर नही निकल पायेंगे।

दूसरी बात राजनीति की है। जो राजनीतिक लोग धर्म की बातो को साम्प्रदायिक बताते है, वे स्वय आज इतने सकुचित दायरे मे आ गये है कि उनके लिए क्या कहा जाये ? धर्म-शास्त्र और नीति-शास्त्र मे आत्म-प्रशसा

और पर-निन्दा को दोष माना गया है जबकि आज राजनीति में आत्म प्रशंसा और पर-निन्दा करना एक आवश्यक कर्तव्य ही समझा जाने लगा है । अत उन राजनीतिक लोगों के लिए भी एक आचार-संहिता बने जो सब दलों को मान्य हो । इसके लिए एक सामान्य संगठन भी बने जिसमें एक दल का प्रतिनिधि ही अपने दल के व्यक्तियों से स्वयं उस आचार संहिता के मानने का अनुरोध करे । यह किसी को बुरा नहीं लगेगा ।

अणुव्रत आन्दोलन इन सब पहलुओं को छूता है और इसके लिए यह प्रयत्नशील भी है । आन्दोलन का पिछला वर्ष बहुत सफल और यशस्वी रहा तथापि एक बात निराशा की भी है । जिस पैमाने में अनैतिक और विध्वंसात्मक कार्य चल रहे हैं उस पैमाने में नैतिक कार्य नहीं चल रहे हैं । इसका एक कारण भी है अनैतिक कार्यक्रमों में लाभ, भाव व सत्ता का आकर्षण होता है अत उस ओर जनता की सहज प्रवृत्ति हो जाती है । नैतिक कार्यक्रमों की ओर जनता आकर्षित नहीं होती क्योंकि वहां कोई लाभ या स्वार्थ-सिद्ध होने की सम्भावना नहीं रहती । हमारा लक्ष्य है कि जन-जन में यह बात पहुंचा दें कि अनैतिकता में पतन है और नैतिकता में जीवन का समुत्थान निहित है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिन व्यक्तियों और संस्थाओं में नैतिक निष्ठा है उनका सहयोग आन्दोलन को मिलेगा ।

[१६ नवम्बर १९५ को कानपुर (उत्तरप्रदेश) में अणुव्रत-आन्दोलन के नवम् वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

: ५ :

सादगी व सरलता निर्धनता की पराकाष्ठा नहीं

हिंसा व आरम्भ के प्रसव

जिसकी चाह नहीं है, उसकी राह सामने है और जिसकी चाह है, उसकी राह नहीं है। आज का मनुष्य विपर्यय की दुनिया में जी रहा है। चाह सुख की है, कार्य दुःख के हो रहे हैं। चाह शान्ति की है, प्रयोग अणु-अस्त्र के चल रहे हैं।

भगवान् श्री महावीर ने कहा—दुःख हिंसा व आरम्भ प्रसूत है। इन शब्दों में वर्तमान की कठिनाइयों का संग्रह है। हिंसा का पहला प्रसव है—वैर-विरोध, दूसरा—भय और तीसरा—दुःख।

आरम्भ का पहला प्रसव है—संग्रह, दूसरा—वैषम्य और तीसरा—दुःख। किन्हीं को अतिभाव सता रहा है और किन्हीं को अभाव। अतिभाव के पीछे संरक्षण का रौद्र भाव है और अभाव के पीछे प्राप्ति की आर्त्त वेदना।

सुख का हेतु अभाव भी नहीं है और अतिभाव भी नहीं है। सुख का हेतु स्वभाव है। मनुष्य अपने स्वभाव से जितना दूर हटता है, उतना ही अतिभाव-पदार्थ का अतिसंग्रह करने लगता है। पदार्थ से दूर हटने का मतलब है, स्वभाव की ओर गति। स्वयकृत अभाव में स्वभाव का दर्शन निकट में होता है। अभाव विवशता से होता है, वह दुःख देता है। पदार्थ का अभाव हो—यह कोई कैसे चाहेगा ? अतिभाव की चाह होती है, पर वह करनी नहीं चाहिए। यथाभाव की क्षमता समाज-व्यवस्था में है। जो नहीं होना चाहिए, उसके निवारण की क्षमता त्याग या व्रत में है। अणुव्रत का सन्देश यही है—

या नहीं होना चाहिए उससे दूर रहें। यह व्यक्ति मात्रों की स्वयं स्फूर्त व्यवस्था है। सुख का हेतु अहिंसा या मैत्री है। उसका बाधक अनधिकार है। जो व्यक्ति दूसरों के स्व का कभी हरण नहीं करता वह सबका मित्र है। सुख की दृष्टि बाहरी पदार्थों से जुड़ी हुई है यह मानना भ्रम है। इससे मानसिक असमाधि बढ़ती है। भगवान् श्री महावीर ने कहा—महारम्भ नरक का हेतु है। नरक कोई माने या न माने यह आगे की बात है किन्तु इससे दुर्गति होती है इसमें कोई सन्देह नहीं। महारम्भ का उद्गम महापरिग्रह है। महापरिग्रह का उद्गम है महाभोग या महाविलास। क्रम यों हुआ—महाविलास के लिए महापरिग्रह और महापरिग्रह के लिए महारम्भ। जिसका मूल दुर्गन्ध है उसके फल-फूल में सुरभि कहाँ से होगी? महारम्भ को आज की भाषा में बड़े उद्योग और बड़े व्यापार कहा जा सकता है।

राष्ट्रीय दृष्टि से बड़े बड़े उद्योगों और व्यापारों का विस्तार होता है, प्रोत्साहन भी दिया जाता है। मैं अर्थ-शुद्धि की दृष्टि से कहता हूँ सुख और शान्ति के लिए महारम्भ और महापरिग्रह आदरणीय नहीं है यह ऋषि-वाणी है। निष्ठापूर्वक आरम्भ और परिग्रह के अल्पीकरण से सुख शान्ति का विकास होता है यह अनुभवगम्य भी है।

उत्तम जीवन

जिस मार्ग में जो स्वयं स्पष्ट होता है वही उसकी प्रेरणा देने का अधिकारी है। दीये से दीया जलता है। दृष्टि से दृष्टि मिलती है। भारतवर्ष में दृष्टि के सम्यक्करण का बहुत महत्त्व रहा है। यहाँ आत्मदर्शी ऋषियों की लम्बी परम्परा है। आरम्भ परिग्रह और भोग से दूर रहकर उन्होंने जो सत्य पाया समाधान पाया सुख और शान्ति का अनुभव पाया वही उन्होंने सबको सुझाया। उसका सार है—तप और संयम। तपस्वी और संयमी जीवन ही उत्तम जीवन है।

इच्छा का उपशम

भोग-प्रधान क्षेत्रों में पदार्थों से समृद्ध जीवन ही उच्च जीवन है। त्याग प्रधान परम्परा इस मानदण्ड को स्वीकार नहीं करती। भारतीय परम्परा में दरिद्रता निर्धनता की पराकाष्ठा नहीं है किन्तु त्याग की महिमा है। मन से

मन को समाधान नहीं मिलता। मानसिक समाधि के बिना शान्ति नहीं। हमारा शान्ति-सूत्र है—द्वन्द्व का उपशम। भोग-प्रधान जगत में द्वन्द्व ही परम पुरुषार्थ है।

सबसे बडा सकट

जी चाहता है मन की सारी अनुभूति सबके सामने उतार दू। कुछ बनता भी है, नही भी बनता। नही में अच्छा ही है कि कुछ बनता है। नव-निर्माण सरल नही होता। जीवन के मूल्य बदलते है, मूल्याकन की दृष्टिया बदलती है, वे नहीं बदल रही है। जो नहीं बदलने का है वह बदल रहा है। अनुशासन की कमी, विनय की परम्परा का उन्मूलन, त्याग के प्रति अश्रद्धा स्वार्थ की प्रचुरता—ये नहीं बढने चाहिए, पर ये बढ रहे है। उद्दण्डता बढ रही है, पुलिस की गोली चलने का क्रम बढ रहा है शासन का नियत्रण बढ रहा है। स्व-नियमन कम हो रहा है। यही क्रम चला तो एक दिन सब स्वय को खतरे म पायेंगे।

स्व-नियन्त्रण की कमी दीखती है, तब सभी को दुख हो रहा है। शासक भी पछताते है, और-और भी पछताते है। किन्तु कोरे पछताने स क्या होगा? स्व-नियमन की परम्परा को छोडकर दूर भागने का क्रम तोडना होगा। राजनैतिक चेतना के बहाव में सारी बाते गौण हो रही है, यह सबसे बडा सकट है।

राजनैतिक प्रभुत्व अतिमात्र बढ गया है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र उससे आक्रान्त है। स्व-नियमन पर यह आघात है। पूजी, सत्ता और केन्द्रीकरण में सन्तुलन मिट जाता है।

अणुव्रत का आदर्श यही है कि व्यक्ति-व्यक्ति स्व-नियमन के द्वारा पूजी, सत्ता और अधिकार का सग्रह छोडें। अपने को भार-मुक्त बना दूसरो को हल्का बनाने का मार्ग दिखायें। अनुकरण की दुनिया मे अगली पक्ति वालो को सम्हलने की अधिक आवश्यकता है।

[१२ अक्टूबर, १९५६ को सरदारशहर (राजस्थान) मे अणुव्रत-आन्दोलन के सप्तम वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त मगल प्रवचन]

: ६ :

व्रत और अनुशासन

मानव मात्र का स्वभाव है कि वह अन्धकार की परिधि से बाहर निकल कर प्रकाश की ओर बढ़ने का इच्छुक होता है। व्रत-ग्रहण में भी यही तथ्य निहित है। मानव-समाज में व्याप्त विषमता, अनैतिकता एवं बेईमानी जब व्यक्ति को दृष्टिगोचर होती है तो उसके अन्तर से एक प्रश्न उठता है, एक चीख निकलती है — यह क्या हो रहा है? वैमनस्य, शोषण एवं भ्रष्टाचार को दूर करने, प्रकाश की झलक देखने व सन्मार्ग अपनाने के लिए व्यथित मानव की आत्मा उद्वेलित हो उठती है और वह त्याग की भावना से प्रेरित होकर व्रतों की ओर आकर्षित होता है।

मनुष्य सर्व प्रथम व्रतों को सुनता है, उनकी सूक्ष्मता व महत्ता को अपने ज्ञानरूपी तराजू पर तौलता है, उसका विवेक जागृत होता है और फिर वह अपने जीवन को सुधारने के लिए व्रत-ग्रहण करता है।

व्रतों में जो सबसे बड़ी बात होती है वह है 'आत्मानुशासन'। व्रत-ग्रहण करना आसान है परन्तु उसको निभाना बहुत मुश्किल है। यह मानी हुई बात है कि शुभ कार्य की सफलता में अनेक विघ्न और बाधाएं उत्पन्न होती हैं। व्रती को अपनी संकल्प-साधना से डिगाने के लिए मोहरूपी चाण्डाल निरन्तर प्रयास करता रहता है। किन्तु वह विचलित होना नहीं जानता जिसने कि अपनी आत्मा पर अनुशासन स्थापित कर लिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्रत-साधना से विचलित न होने के लिए मोहरूपी चाण्डाल पर विजय पाना आवश्यक है। व्रती को चाहिए कि वह अपनी आत्मा पर अंकुश रखे और किसी भी परिस्थिति में अपने व्रत से विचलित न हो। आत्मानुशासन के बिना कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता।

हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही व्रतो की ओर मनुष्य का आकर्षण होता है, अत प्रेरणा प्राप्त होने पर व्यक्ति को चाहिए कि वह केवल व्रतो के शब्दो को नही पकडे, बल्कि उसकी व्यापक भूमिका को पकडे। व्रत ग्रहण मे अपने जीवन क्षेत्र मे जिस महान् शक्ति का बीजारोपण हो चुका है, उसे वह फलता-फूलती अनुभव करे और अपने साथियो को इसका अनुभव कराये, किन्तु एक बात का ध्यान अवश्य रखा जाये कि व्रतो के पालन मे किसी प्रकार का दबाव या एहसान नही होना चाहिए। वस्तुत हृदय परिवर्तन ही सच्चा धर्म बतलाया गया है। व्रत-पालन मे स्व-नियमन व हृदय-परिवर्तन जितना सहायक होगा, उतना दूसरा नही।

जो अणुव्रती बने है, उन्हे पर-निर्भरता से दूर रहना चाहिए। पर-निर्भरता से व्रत विचलित होते रहते है, अत स्व-निर्भरता की आवश्यकता है।

व्रती समाज की कल्पना जितनी दुरूह है, उतनी ही सुखद है। व्रत लेने वाला कोरा व्रत ही नही लेता, पहले वह विवेक को जगाता है, श्रद्धा और सकल्प को दृढ करता है, कठिनाइया झेलने की क्षमता पैदा करता है, प्रवाह के प्रतिकूल चलने का साहस लाता है, फिर वह व्रत लेता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो बाहर का अनुशासन विजातीय अनुशासन है। व्रती आत्मानुशासन की परिधि मे आ जाता है। आज अनुशासन की शृंखला छिन्न-भिन्न हो रही है। स्वतन्त्रता का सही मूल्य नही आका गया है। नियमानुवर्तिता और मर्यादा के बिना स्वतन्त्रता नही आती। अणुव्रत-आन्दोलन स्वतन्त्रता की यथार्थ अनुभूति के लिए आत्मानुशासन का वातावरण पैदा करना चाहता है। विधिवत् कोई अणुव्रती बने या न बने, यह उसकी अपनी इच्छा है, किन्तु आत्मानुशासन को विकसित किये बिना कोई न रहे, यह इसकी पृष्ठभूमि है, जो मैत्रीपूर्वक समझाने-बुझाने से हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही प्रशस्त हो सकती है।

दबाव डालने की प्रक्रिया हमारे पास नही है। वह भय का रास्ता है। अभय के बिना स्वतन्त्र भावना विकसित नही होती। अणुव्रती जो बने है, उन्हे पर-निर्भरता की ओर मुह किये नही चलना चाहिए। वह व्रतो को तोडने का मार्ग है। विलास, भोग, बडप्पन और ऐशोआराम व्रतों के शत्रु है। व्रतो

का पालन सामयिक वृत्ति से नहीं होना चाहिए। उसकी आत्मा का विकास होना चाहिए।

हमारा विश्वास संख्या में नहीं मात्रा में है। तेज मात्रा में निखरता है संख्या से नहीं।

आत्मानुशासन का आलोक जनसाधारण तक पहुंचना चाहिए। अणुव्रतियों का एक विशेष दायित्व है कि वे केवल प्रचार द्वारा ही नहीं किन्तु अपने सतत आचरण द्वारा अनुभूतियों द्वारा अपने आसपास के वातावरण को आत्मानुशासन के लिए उत्कण्ठित बनायें।

अनैतिकता में अभिभूत लोग सम्य नहीं हैं। वे उससे दूर होना भी चाहते हैं पर बहुतों को मार्ग नहीं मिलता। कुछ लोग आग्रही भी हो सकते हैं। शान्तिपूर्वक समझाया जाये तो वे भी बदल सकते हैं। हमें मनुष्य की योग्यता में पूरा विश्वास है।

वातावरण स्व-नियमन से प्रभावित हो जाये तो बढ़ती हुई उच्छृंखलता की रीढ़ टूट सकती है। मैं प्रसन्न हूं कि लोग व्रतों का अधिकाधिक मूल्य आंकने लगे हैं। घोर असंयम के युग में संयम की रेखा चमकती रहे यह भी कम बात नहीं है। वह और अधिक स्पष्ट बने यह तो और भी खुशी की बात है। मैं आशावान् हूं। आप सब लोग आशावादी बनें और चरित्र उन्नयन का कार्य आगे बढ़ायें।

[१० अक्तूबर १९५६ को सरदारशहर (राजस्थान) में अणुव्रत-आन्दोलन के सप्तम वार्षिक अधिवेशन पर प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

: ७ :

अशान्ति की चिनगारियां

सुख-सुविधा और शान्ति

आप्त अनुभव है—'नेव से अतो नेव से दूर' वह न समीप है और न दूर। यह बहुत गूढ है, पर बहुत ही सच है। मनुष्य शान्ति की खोज में है। वह बाहर से नहीं आती, इसलिए वह उससे दूर नहीं है और वह मिल नहीं रही है इसलिए वह उसके समीप भी नहीं है। वह न दूर है और न समीप। इसलिए उसे समझना कठिन है, पकड़ना कठिनतर, रखना कठिनतम। पहले सुख सुविधा, फिर शान्ति—ऐसा लगता है पर स्थिति ऐसी नहीं है। सुख-सुविधा या आवश्यकता की पूर्ति जीवन-निर्वाह का सहारा या साधन अवश्य है, पर शान्ति की पहली मंजिल नहीं है। सुख-सुविधा की सामग्री के परम भाव में भी बहुत सारे शान्ति के लिए मारे मारे फिरते हैं। उनके अभाव से प्रताडित व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त किए हुए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सुख-सुविधा और शान्ति के परस्पर में कोई लगाव नहीं है—पौर्वापर्य या सहाचर्य भी नहीं है। सुख-सुविधा होने पर भी शान्ति हो—ऐसी व्याप्ति या नियम नहीं है। इसलिए जीवन-निर्वाह या सुख सुविधा की समस्या के समाधान के साथ शान्ति के प्रश्नों को नहीं जोडना चाहिए। उस पर स्वतन्त्र दृष्टि से विचार होना चाहिए।

शान्ति का बाधक तत्त्व उन्माद या व्यामोह है। वैयक्तिक उन्माद के रहते व्यक्ति को शान्ति नहीं मिलती। यही दशा जाति और राष्ट्र की है। जीवन की धारा व्यक्ति, जाति, प्रदेश, राष्ट्र और धर्म से जुड़ी हुई होती है, इसलिए उसे इन सबका गौरव होता है, पर वह गौरव दूसरे व्यक्ति, जाति प्रदेश, राष्ट्र और धर्म के पतन पर पलने लगता है, उन्हें दबाकर बढ़ता है,

वहीं संस्कृति भंग हो जाती है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है, उसके श्रम का अनुचित लाभ उठाना चाहता है, अपने को हीन समझ उन्हें तिरस्कृत करता है—यह वैयक्तिक उन्माद है। शान्ति अन्तर नियन्त्रण से मिलती है। अपनी सुख-सुविधा को सर्वोपरि मानकर चलने वाला अपने पर नियन्त्रण रख नहीं सकता। इसलिए वह शान्त न बना रहता है। एक ओर कम दाम देकर अधिक काम कराने की भावना है, दूसरी ओर अधिक दाम लेकर काम से जी चुराने की भावना है, यह वैयक्तिक उन्माद का रोग है। अति विलास, अभिमान आदि चरित्र को मलिन करने वाली सारी वृत्तियां उसी से पैदा होती हैं। ये अशान्ति की चिनगारियां हैं।

समृद्ध और सभ्य कहलाने वाली जातियां जातीय उन्माद से कितनी पीड़ित हैं, इसका नमूना दक्षिण अफ्रीका की जाति-भेद की नीति है। हिन्दुस्तान भी अस्पृश्यता के रोग से कम पीड़ित नहीं है। अमेरिका जैसे राष्ट्र का आधुनिक मानस भी नीग्रो जाति के प्रति घृणा को मधुर उन्माद नहीं मानता है। ये अशान्ति की चिनगारियां हैं।

प्रादेशिकता और प्रान्तीयता की बीमारी भी कम हानिकारक नहीं है। एक राष्ट्र की प्रजा भी प्रान्त भेद के कारण आपस में गुत्थमगुत्था करे, एक दूसरे को कुचलना या गिराना चाहे यह कितनी दयनीय दशा है। अभी भाषा की सब एकता के प्रश्न को लेकर प्रादेशिकता का उन्माद भी फैला था। यह सचमुच चिन्तनीय है। तुच्छ स्वार्थ महान् हित के बाधक बनते ही सकुचाते यह स्पष्ट अनुभव हुआ। ये प्रादेशिक उन्माद अशान्ति की चिनगारियां हैं।

राष्ट्रीय उन्माद भी भयंकर होता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाये रखना, हड़प जाना चाहता है। तब अशान्ति के स्फुलिंग ज्वाला और विराट् बनते हैं। छोटे और बड़े सभी युद्ध इसके स्वयंभूत प्रमाण हैं।

धार्मिक उन्माद—साम्प्रदायिक व्यामोह सबसे अधिक भयंकर है। धर्म रक्षा के बहाने, अहिंसा के नाम पर हिंसा और सत्य के नाम पर, झूठ का जितना व्यवहार होता है उतना दूसरे किसी के बहाने नहीं होता।

सत्य की विकृत अभिव्यक्ति

ये उन्माद ज्यों के त्यों धर्म और शान्ति की पलें पड़ जाते यह कभी

नही होने की बात है। इस तथ्य पर पहु चने के बाद अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता अनुभूत होनी है। वह चरित्र का आन्दोलन है। दूसरे शब्दो मे शान्ति का आन्दोलन है। चरित्र और शान्ति दो नही, एक ही सत्य की द्विरूप अभिव्यक्ति है। चरित्र है वहा शान्ति और शान्ति है वहा चरित्र। तात्पय यह हुआ कि चरित्र और शान्ति परस्पर परिव्याप्त है।

स्वत्व-विलय

व्यक्ति मिट नही सकता। जाति, प्रदेश, राष्ट्र और धर्म भी मिट जायें—यह सम्भव नही लगता। इन सबकी कृत्रिम भेद-रेखाए, ऊपरी सीमाए मिट सकती है, वे मिट जायें—यह अणुव्रत आन्दोलन की प्रेरक भावना है। एक व्यक्ति दूसरा मे विलय कर दे, अपने को मिला दे। दूसरो के स्वत्व को चूसने की धृष्टता न जागे, उतना विलीनीकरण आवश्यक है। इसी प्रकार अस्पृश्यता हीनता, सन्देहशीलता, वैमनस्य, आक्रमण और मिथ्यावाद न बढे, उतनी सीमा तक जाति, प्रदेश, राष्ट्र और धम सम्प्रदायो का विलीनीकरण भी आवश्यक है। यह विलय मौलिक निधि या तात्विक गौरवमय परम्परा को मिटाने वाला नही है। यह अति स्वार्थ, झूठा अभिमान, झूठे बडप्पन की भावना का त्याग है।

अणुव्रत-आन्दोलन के पास त्याग ही त्याग की बात है। झूठ त्याग देंगे तो सचाई अपने आप निखर उठेगी। दूसरो के प्रति सयम बर्तेंगे तो सद्भावना अपने आप बढेगी। अपने आप मे सयत रहेंगे तो शान्ति स्वय बढेगी। यह सब कुछ कल्पना या भावना जैसा लगता होगा। लोग कहते है—अणुव्रत-आन्दोलन केवल भावना-प्रधान है, कार्य-प्रधान नही। बात कुछ सच भी है। सही भावना पहले आनी ही चाहिए। उसके बिना कार्य की अच्छाई भी कैसे आयेगी ?

अणुव्रतियो का आत्मालोचन

जो अणुव्रती बने है, उनकी जीवन-चर्या अणुव्रतो के अनुरूप है या नही, इसे वे भली भान्ति निहारें। उन्होने सयम का पथ चुना है, पर जीवन की आवश्यकताए कम हुई है या नही, वे मुड कर देखें। सरल जीवन बिताने का सकल्प किया है, पर वक्रता का भाव छूटा या नही, इसे टटोलें। समता व

मैत्री का व्रत लिया है पर दूसरों के प्रति उसकी क्रूरता कम हुई या नहीं पराश्रम्यान का भाव घटा या नहीं इसकी आलोचना करें। परिग्रह का परिमाण करने की इच्छा प्रकट की है पर भोग-विलास और उसकी सामग्री के संग्रह का आकर्षण कम हुआ या नहीं इसे सोचें। सत्य के प्रति निष्ठा दर्शायी है पर ईमानदारी की वृत्ति बढ़ी या नहीं इसका अणु-वीक्षण करें। थोड़े में इतना ही देखें त्याग और भोग के अन्तर्द्वन्द्व में उन्हें मजा लगा या नहीं ? त्याग से श्रद्धा बढ़ी आत्म-विश्वास और अभय बढ़ा या नहीं इसकी कसौटी करें। हिंसा और परिग्रह के अल्पीकरण की ओर प्रगति करने के लिए महाहिंसा और महापरिग्रह के मार्गों को छोड़ा या नहीं इस पर गौर करें। यह अणुव्रतियों का आत्मालोचन है। वे इन प्रश्नों का अपने आपमें उत्तर लें और दूसरों को इसका व्यावहारिक उत्तर दें मौखिक नहीं।

सम्मेलन का मुख्य कार्य व्रतों की भावना का प्रसार है। उसमें कौन लाभ लेता है कौन नहीं—यह व्यक्ति का अपना प्रश्न है। मुझे विश्वास है सम्मेलन अधिकाधिक सफल होगा। लोग व्रतों की भावना को समझेंगे स्वतन्त्र मूल्य आंकेंगे और सभी जन शान्ति का पथ प्रशस्त करेंगे।

[२ अक्टूबर १९५५ को उज्जैन (मध्य प्रदेश) में अणुव्रत आन्दोलन के षष्ठम वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त मंगल प्रवचन]

: ८ :

व्रत साध्य नही; साधन

आज पूर्णाहुति का दिन है। छठ अधिवेशन का कार्यक्रम पूर्ण हो रहा है, पर लक्ष्य पूरा नही हो रहा है। वह अब भी बहुत आगे है। अणुव्रतियो को उसे पाने के लिए अपने आपको होम देना है। दूसरो को होम देने की बात बहुत सरल है, उसका अभ्यास भी है, पर अपने आपको होम देने का अभ्यास नही है। अणुव्रतियो को वही करना है।

अणुव्रती भाई-बहिनो ने दीक्षा ली है, व्रत लिये है। व्रत जीवन की पवित्रता है। पवित्रता बाहर से नही आती। अपवित्रता बाहर से आती है। अपने आपको होम देने का अर्थ है, बाहर से आने वाली अपवित्रता को रोकना। इसलिए अणुव्रतियो ने विशेष कुछ नही किया, विवेकशील प्राणी होने के नाते जो अवश्य करना चाहिए, वह किया है।

ये व्रत कोई बडे नही है, किन्तु मनुष्यो की मनोदशा बहुत नीची हो गई। वैयक्तिक स्वार्थ सीमा पार कर गया, इसलिए ये भी बहुत बडे लग रहे है। नही तो भला धोखा न देना अप्रामाणिकता का व्यवहार न करना, मिलावट न करना, झूठा तोल-माप न करना, ऐसी-ऐसी सहज बातो का व्रत लेने की बात ही क्यो उठे ?

पाप-वृद्धि का क्रम

पदार्थ मनुष्य पर छा गये। वह अपने आपको भूल बैठा। बेईमान दृष्टि मे बुराई पनपने लगी। बुराई भी एक साथ नही आ जाती। उसका भी अभ्यास-क्रम होता है। पहले पहल बुराई करते घृणा होती है, दूसरी बार सकोच, तीसरी बार नि सकोचता आ जाती है और चौथी बार मे साहस बढ

जाता है। फिर त्याग का अभ्यास हो जाता है। अभ्यस्त वृत्ति का त्याग सुगम नहीं होता। इसलिए भलाई का सहज प्रवेश नहीं होता।

भलाई का स्थिरीकरण

बुराई भी अभ्यास के बिना नहीं आती तब भलाई अभ्यास के बिना कैसे आये? उसके लिए तो और अधिक साधना चाहिए। साधना का क्रम है श्रद्धा। भलाई में श्रद्धा हो और वह सम्यग् हो। उसके बाद विषय-त्याग या संयम। संयम की स्थिरता के लिए व्रत-ग्रहण। इसके बाद आन्तरिक शोधन का प्रयत्न चलता होने पर भलाई का स्थिरीकरण होता है। अणुव्रती ऐसा अभ्यास करें।

व्रत साध्य नहीं है। साध्य है आत्मिक पवित्रता जीवन की शुद्धि। व्रत उसके साधन हैं। साधन को अपनाकर निश्चिन्त हो जाना उचित नहीं है। ये आगे बढ़ने की प्रेरक भावनाएं हैं गतिरोध के स्तम्भ नहीं। वही जो व्रत या नियम हैं वे केवल बाहरी स्थितियों से दूर और पदार्थ से वंचित ही न हों, वे आन्तरिक वासनाओं से भी दूर रहने का अभ्यास बढ़ाएं। ऐसा हुए बिना त्याग से व्रत का यथेष्ट परिणाम नहीं आता। इधर त्याग हो जाता है और उधर वासनाओं का वेग नहीं रुकता वैसी हालत में वे मार्गान्तर या रूपान्तर से प्रकट होती हैं। फिर त्याग में गलियां निकलती हैं यह वांछनीय नहीं।

अन्यायपूर्ण तरीकों से धन कमाने का त्याग है पर जीवन धार्मिक भाव से अधिक वासित नहीं तब संग्रह की वासना मन्द नहीं होती। संग्रह की वृत्ति तीव्र होती है तब त्याग क्षणिक बन जाते हैं। जितना अन्याय ज्ञात था बान्धा और छोड़ा उसके सिवाय अन्याय के शेष तरीकों में भावना प्रसार पाती है जो परिणाम में अन्याय का मार्ग बदलता है या रूप बदलता है पर अन्याय की वृत्ति जिससे सारे अन्याय जन्म से बढ़ते हैं वह नहीं बदलती बुराई नहीं मिटती। इसलिए मैं कहना चाहूंगा कि अणुव्रती बड़ी गहराई से सोचें। उन्होंने सोचा भी है। वे महान् कार्य के लिए चले हैं तो चलते ही चलेंगे रुकेंगे नहीं। कठिनाइयां आती हैं पर उनसे घबराएंगे नहीं। यह कांटों का मार्ग है। पर कांटों पर चलने वाला ही फूल का सौकुमार्य और सुरभि पा सकता है। मैं आशा करता हूं—अणुव्रती भाई-बहिनें अपना परि

याणामि, मग्ग उवसम्पवज्जामि' का सकल्प और 'सयम खलु जीवनम्' का घोष लेकर प्रस्थित हुए हैं, वे अपने साध्य तक पहुचने मे सफल होगे।

[२५ अक्टूबर, १९५५ को उज्जैन (मध्य प्रदेश) मे अणुव्रत-आन्दोलन के षष्ठम वार्षिक अधिवेशन मे प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

६

आन्दोलन का घोष

आचार और विचार में जहाँ दो हैं वहाँ एक भी हैं। इनमें जहाँ पौर्वापर्य (पहले पीछे का भाव) है वहाँ नहीं भी है। विचार के अनुरूप ही आचार बनता है अथवा विचार ही स्वयं आचार का रूप लेता है। कार्यप्रणाली में मिलता है — पहले विचार और पीछे आचार। आचार शुद्ध नहीं तो विचार कैसे शुद्ध होगा? शुद्ध विचार के बिना आचार शुद्ध नहीं बनता। आचार विचार के अनुकूल बन जाय तब उनमें द्वैध नहीं रहता। विचार जैसा आचार नहीं बनता वहाँ वे दो बन जाते हैं। अपेक्षा है विचार और आचार में सामंजस्य आये।

कई व्यक्ति ऐसे हैं जिनमें विचारों की स्फुरणा नहीं है उन्हें जगाने की आवश्यकता है। कई व्यक्ति जागृत हैं किन्तु उनकी गति सम्यक् दिशा में नहीं है उनकी गति बदलने की आवश्यकता है। कई व्यक्ति सही दिशा में हैं किन्तु उनके विचार केवल विचार तक ही सीमित हैं उन्हें सावधान करने की आवश्यकता है।

मूल बात है—आचार-शुद्धि की आवश्यकता। उसके लिए विचार क्रान्ति चाहिए। उसके लिए सही दिशा में गति और उसके लिए जागरण अपेक्षित है।

राजनीति की धारा परिस्थिति को बदलना चाहती है और वह उसको बदल सकती है। अणुव्रत का मार्ग संयम का मार्ग है। इसके द्वारा हमें व्यक्ति को बदलना है। परिस्थिति बदले इसमें हमारा विरोध नहीं किन्तु उसके बदलने पर भी व्यक्ति न बदले अथवा दूसरे पथ की ओर मुड़ जाये यह वांछनीय नहीं। सामग्री के अभाव में जो कराहता रहे वही उसे पाकर

विलासी बन जाये, यह उचित नहीं। संयम की साधना नहीं होती, तब यह होता है। संयम का लगाव न गरीबी में है, न अमीरी में। इच्छाओं पर विजय हो—यही उसका स्वरूप है। इच्छाएं सम्भव है, एक साथ नष्ट न भी हों, किन्तु उन पर अंकुश तो रखना ही चाहिए। शक्तिशाली और पूंजीपति वर्ग को इच्छाओं पर नियंत्रण करना है और अधिक संग्रह को भी त्यागना है। गरीबों के लिए अधिक संग्रह के त्याग की बात नहीं आती, किन्तु इच्छाओं पर नियंत्रण करने की बात उनके लिए भी वैसी ही महत्त्वपूर्ण है जैसी धनी वर्ग के लिए है।

बड़े या उच्च कहलाने वाले वर्ग के लिए यह चुनौती है कि वह सन्तोषी बने। निम्न वर्ग स्वयं उनके पीछे चलेगा। ऐसा नहीं होता है तब तक देखा-देखी या स्पर्धा मिटती नहीं।

विश्व की जटिल परिस्थितियां, मानसिक और शारीरिक वेदनाओं को पाते हुए भी क्या मनुष्य-समाज नहीं चेतेगा? जीवन की नश्वरता और सुख-सुविधाओं की अस्थिरता को समझते हुए भी क्या वह नहीं सोचेगा?

जीवन की दिशा बदलने के लिए हम सबका एक घोष होना चाहिए—"संयमः खलु जीवनम्।" अणुव्रत-आन्दोलन का यही घोष है। जीवन के क्षणों में शान्ति आये, उसके लिए यह नितान्त आवश्यक है।

[१७ अक्टूबर, १९५४ को बम्बई में अणुव्रत-आन्दोलन के पंचम वार्षिक अधिवेशन पर प्रदत्त मंगल प्रवचन]

१

दुःख-मुक्ति का उपाय

आज देश की एक विशिष्ट चारित्रिक योजना का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन अत्यन्त उत्साह व उल्लासपूर्ण वातावरण में प्रारम्भ हो रहा है। मुझे वे दिन याद हैं जब इस योजना का प्रथम अधिवेशन देहली के चाँदनी चौक में सम्पन्न हुआ था। उस समय ५ से अधिक भाई बहनों ने आत्मसाक्षी व परमात्मा की साक्षी से धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय दूषित वातावरण को मिटाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर एक साथ अणुव्रत-योजना की २ प्रतिज्ञाओं को ग्रहण किया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि हम अहिंसावादी बन कर हिंसावादी प्रवृत्तियों से मुँह मोड़ लेंगे, सदाचारी बनकर जन-जन में व्याप्त चोरबाजारी, रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार से दूर रहेंगे व नैतिक आदर्शों को अपनाकर समाज में छाई हुई अनैतिकता के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी संग्राम छेड़ेंगे। उन्होंने उस समय देश के कोने-कोने में यह पहुँचा दिया कि नैतिकता के महापथ में एक साथ दृढ़ संकल्प बन कर कैसे बढ़ चलना चाहिए। इस गम्भीर व शान्त अनुष्ठान के कारण राजधानी के वातावरण में एक नई चेतना की लहर दौड़ गई थी। मुझे याद है उस समय लोगों के दिल में अनेक आशंकाएँ भी घर किये हुए थीं। वे सोचते थे कि हम देखेंगे—आज जो ये व्रती बने हैं वे दो दिन के बाद क्या करेंगे? मैं समझता हूँ यह आशंका होनी कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। देश का जो व्यापक गन्दा वातावरण है उसके विरुद्ध चार-पाँच सौ व्यक्ति ही यदि कोई कदम उठायें तो वह आशंका से मुक्त कैसे हो सकती है? किन्तु इसके साथ-साथ यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने जो कदम उठाया था वह किसी डंडे या कानून के भय से नहीं अपितु आत्मा व परमात्मा के भय से, पंच साक्षी व आत्म प्रेरणा से उठाया

था। इसलिए मुझे विश्वास था कि यह कार्यक्रम बढेगा और लोग इसे अपनायेंगे। आज उसी भावना का यह मूर्तरूप है कि उस समय अणुव्रतियो की जो ५०० से कुछ अधिक सख्या थी, अब वह लगभग २००० से अधिक बढ गई है। मुझे सख्या से कोई प्रेम नही है। मुझे प्रेम काम से है, वह होना चाहिए। सम्भवत ५००० के लगभग ऐसे व्यक्ति है जो कुछ नियमो को छोड कर सघ के काफी नियमो को निभा रहे है। मै आशा करता हू वे भी अपने जीवन मे पूरे नियमो को उतार कर इस चारित्रिक अनुष्ठान मे आगे बढने का पुनीत प्रयत्न करेंगे। इनके अतिरिक्त लाखो व्यक्ति ऐसे है, जो आन्दोलन की भावना से प्रभावित है।

इस बार यह चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन राजस्थान के ऐतिहासिक नगर जोधपुर मे हो रहा है, जो मारवाड की भूतपूर्व राजधानी और मरु प्रान्त का एक विशिष्ठ नगर है।

निर्भयता

आर्य पुरुषो ने प्राणी मात्र के अभीष्ट रहस्य का व्यक्त करते हुए कहा है—'सुहम या दुक्ख पडिकूला' सब प्राणी जीवन से प्रम रखने वाले है, मरना कोई नही चाहता। दु ख किसी को भी प्रिय नही है। सब सुख और शान्ति से जीवन बिताना चाहते है। ऐसी स्थिति मे प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह उस मार्ग की खोज करे, जिससे वह अपनी अभीष्ट मजिल पा सके। मेरी दृष्टि मे शान्ति और सुख का सही और अनुपम मार्ग है, निर्भयता। यदि मनुष्य मे निर्भयता होगी तो सुख और शान्ति उसके जीवन मे स्वत उद्भूत होगे। आज मनुष्य मे निर्भयता नही इसी का तो परिणाम है कि मनुष्य सुखी नही है। वास्तव मे भय क्या है ? वह किस बात का है ? इन प्रश्नो का अनेक लोग अनेक प्रकार से समाधान करते है। कोई मृत्यु को सबसे बडा भय बतलाते है और कोई जीवन की सघर्ष भरी व्यथाओ को। एक बार भगवान् महावीर ने समस्त निर्ग्रन्थो को एकत्रित कर पूछा, 'किं भया समणाउसो' हे आयुष्यमन् श्रमणो ! कहो, सबसे बडा भय क्या है? सब अवाक् रह गये। सब अपनी-अपनी बुद्धि दौडाने लगे। किसी ने कुछ सोचा और किसी ने कुछ। अन्त मे उन सबने भगवान् से प्रार्थना की—णोखलु देवाणु

पिया एयमट्ठं आइक्खामो वा भासामो वा ... इच्छामो णं देवाणुप्पियाणं अन्तिए एयमट्ठं जाणित्तए — हे देवानुप्रिय ! हम इस बात से अनभिज्ञ हैं आप हमें इस बात से अभिज्ञ बनायें।

भगवान महावीर ने शिष्यों की प्रार्थना पर सूत्र रूप में उत्तर देते हुए कहा 'दुक्खभया पाणा समणाउसो' हे आयुष्मन श्रमणो ! सबसे बड़ा भय 'दुःख' है।

शिष्यों ने फिर प्रश्न किया 'दुक्खे केण कडे' भगवान् उस दुःख का करने वाला कौन है ?

भगवान् महावीर ने उत्तर दिया 'जीवेण कडे पमाएणं' हे आयुष्मन् श्रमणो ! दुःख को करने वाली स्वयं आत्मा ही है और वह प्रमाद अथवा असावधानी या अपने दुष्कृत्यों का ही प्रतिफल है।

दुःख के निराकरण का उपाय जानने के लिए शिष्यों ने पुनः प्रश्न किया 'दुक्खे कहं कम्मे वेइज्जति' भगवन् दुःख के निराकरण का उपाय क्या है ?

भगवान् महावीर ने संक्षेप में समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा— 'अप्पमाए' अप्रमाद दुःख निवृत्ति का हेतु है।

इन सारे वाक्यों में कितना गहरा तत्त्व छिपा पड़ा है। शिष्यों को इन वाक्यों से बड़ा सन्तोष हुआ। भगवान् ने एक शब्द में यह स्पष्ट समझा दिया कि संसार में सबसे बड़ा भय दुःख है। यही तो कारण है दुःख से सभी मुक्ति चाहते हैं। आज ही चाहते हैं ऐसी बात नहीं है। यह चाह प्राणी मात्र के साथ सदा लगी रहती है। सम्भवतः आज इस चाह का विशेष मूल्य है। इसका कारण यह है कि आज का मनुष्य दुःखों की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ है। उसका जीवन दुःख दावानल की चिनगारियों में झुलसता जा रहा है। अतः मनुष्य यदि दुःख से छुटकारा पाना चाहता है तो निर्भय बने। निर्भय बनने का मार्ग यही है कि मनुष्य प्रमाद से दूर रहे। अप्रमत्त का मार्ग भय मुक्त होने का राजमार्ग है। इसका यही प्रमाद रहित होना है। और जब प्रमाद रहित होता है तब वह सब प्रकार के दुराचारों को छोड़कर सदाचारी बन जाता है। उसके व्यापार में सच्चाई होती है और वह किसी पर भी अत्याचार नहीं करता।

सदाचारी बनने और बने रहने में व्रती को अनेक मुसीबतों से लोहा लेना पड़ता है। मैं कवि की उस उक्ति को भूल नहीं रहा हूं, जिसने कहा है--

'सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः' सज्जन पुरुषों का जीवन बड़ी कठिनाइयों में उलझा रहता है, जबकि दुर्जन लोग मनमानी मौज उड़ाते रहते हैं। इसके साथ यह भी है कि सज्जन पुरुषों के सामने जो कठिनाइयां हैं, वे स्थायी नहीं हैं और न दुर्जन लोगों की मौज ही स्थायी है। कुछ समय के लिए वह अन्धेरगर्दी छायी रह सकती है किन्तु अन्त में विजय सत्य की ही होती है। 'सत्यमेव जयते' यही मंत्र जगह कहा गया है किन्तु यह कहीं भी नहीं कहा गया है—'अनृतमेव जयते'। दुर्जन के सुखी बनने की भित्ति सामग्री होती है, इसलिए उसका अन्तर्हृदय अपने दुष्कृत्यों के लिए रोता रहता है। केवल बाह्य सामग्री के आधार पर वह अपने को सुखी अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में एक सज्जन बाह्य सामग्री के अभाव के कारण उत्पन्न कठिनाइयों के बावजूद भी अन्तर्हृदय में सुख और शान्ति की पवित्र गंगा में अपने आपको पावन अनुभव करता है। स्वल्प समय में ही इसका परिणाम यह निकलता है कि वह परीक्षोत्तीर्ण होकर सज्जनता की महान् विजय कर अपने आपमें एक प्रभावशाली उदाहरण बन जाता है। कहने का मतलब यह है कि व्रती को भय किस बात का है? वह अपने सही मार्ग पर चलता हुआ न तो सरकार के कलंक और आरोप का भाजन बनता है और न समाज का। क्योंकि वह सच्चा है और उसके व्यापार तथा अन्य प्रत्येक काम में सच्चाई का अंश है।

मैंने सुना है, सहस्रों व्यक्तियों के बीच सैकड़ों अणुव्रती खड़े होकर कहते हैं कि अणुव्रती बनने के बाद सबसे बड़ा अनुभव हमें यह मिला है कि हम निर्भय बन गये हैं। हम देखते हैं, अनेक व्यक्ति अपने अनैतिक व्यापार व व्यवहार के कारण बड़े भयभीत रहते हैं, उनका कलेजा हर समय धड़कता रहता है और बहुधा वे सरकार के चंगुल में फंस कर अपमानित भी होते रहते हैं—यह देखकर हमें अपने व्यवहार में और भी अधिक निर्भयता अनुभव होती है, हम निर्भयता पूर्वक हर जगह अपनी सच्चाई प्रस्तुत करते हैं। मैं यह नहीं मानता कि अणुव्रती पूर्ण निर्भयी बन जाते हैं। पूर्ण निर्भयी तो महाव्रती

शिष्य एवम् श्रावको का आग्रह था — इच्छामीणं देवाणु पियाणं अन्तिए एयमट्ठं जाणित्तए — हे देवानुप्रिय! हम इस बात से अनभिज्ञ हैं आप हमें इस बात से अभिज्ञ बनाये।

भगवान् महावीर ने शिष्यो की प्रार्थना पर सूत्र रूप मे उत्तर देते हुए कहा —'दुक्खभया पाणा समणाउसो' — हे आयुष्मन श्रमणो! सबसे बड़ा भय 'दुःख' है।

शिष्यो ने फिर प्रश्न किया 'दुक्खे केण कडे' भगवान् उस दुःख का करने वाला कौन है?

भगवान् महावीर ने उत्तर दिया 'जीवेण कडे पमाएण' — हे आयुष्मन् श्रमणो! दुःख को करने वाली स्वयं आत्मा ही है और वह प्रमाद अज्ञान प्रमादवशी या अपने दुष्कृत्यो का ही प्रतिफल है।

दुःख के निराकरण का उपाय जानने के लिए शिष्यो ने पुनः प्रश्न किया 'से णं भंते दुक्खे कहं वेइज्जति' भगवन्! दुःख के निराकरण का उपाय क्या है?

भगवान् महावीर ने संक्षेप में समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा — अप्पमाए अप्रमाद दुःख-निवृत्ति का हेतु है।

इन आर्य वाक्यो में कितना गहरा रहस्य छिपा पड़ा है। शिष्यो को इन वाक्यो से बड़ा सन्तोष हुआ। भगवान् ने एक शब्द में यह स्पष्ट समझा दिया कि संसार मे सबसे बड़ा भय दुःख है। यही तो कारण है दुःख से सभी मुक्ति चाहते है। आज ही चाहते है ऐसी बात नहीं है। यह चाह प्राणी मात्र के साथ सदा लगी रहती है। सम्भवतः आज इस चाह का विशेष मूल्य है। इसका कारण यह है कि आज का मनुष्य दुःखो की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ है। उसका जीवन दुःख दावानल की चिनगारियों में झुलसा जा रहा है। अतः मनुष्य यदि दुःख से छुटकारा पाना चाहता है तो निर्भय बने। निर्भय बनने का मार्ग यही है कि मनुष्य प्रमाद से दूर रहे। अणुव्रत का मार्ग भय मुक्त होने का राजमार्ग है। उसका व्रती प्रमाद रहित होता है। और जब प्रमाद रहित होता है तब वह सब प्रकार के दुराचारो को ठुकरा कर सदाचारी बन जाता है। उसके व्यापार में सच्चाई होती है और वह किसी पर भी अत्याचार नहीं करता।

बनने से ही सम्भव है। एक अणुव्रती का तात्पर्य जैसे क्रमशः अनाभिमुख होना है उसी प्रकार क्रमशः निर्भयी बनना भी। अणुव्रती का यह चिन्तन होगा— दुःख-मुक्ति का उपाय निर्भयता ही है।

योजना आकाश से नहीं टपकती

अणुव्रत-योजना साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और जातिवाद से सर्वथा दूर है। फिर भी कुछ लोग यह धारणा लिये बैठे हैं कि यह योजना तेरापंथ सम्प्रदाय के संचालक द्वारा प्रवर्तित होने के कारण साम्प्रदायिक है। यह कतई युक्ति संगत नहीं है। कोई भी योजना आकाश से नहीं टपकती। किसी जाति या सम्प्रदाय के किसी न किसी मानव प्राणी द्वारा ही उसका प्रवर्तन हुआ करता है।

भगवान् महावीर व गौतम बुद्ध ने जिस अहिंसा महादर्शन का एक नये प्रकार से प्रवर्तन किया, क्या उसे कोई जैन या बौद्ध सम्प्रदाय प्रवर्तकों द्वारा प्रवर्तित होने के कारण साम्प्रदायिक बता सकता है? जब कोई योजना व्यापक रूप लेकर सामने आती है तब क्या कारण है अमुक स्थान से आने मात्र से उसे साम्प्रदायिक समझा जाये? मुझे याद है, अबकि देहली प्रवास में अनेक साहित्यिक लोगों ने मुझसे प्रश्न किया था कि क्या एक अणुव्रती के लिए यह आवश्यक है कि वह आपको गुरु माने और आपके चरणों में सिर झुकाये? मैंने उनसे स्पष्ट कहा था कि मुझे न तो गुरु बनने की भूख है और न किसी को अपने चरणों में झुकाने की ही। यह महान् अभियान केवल चरित्र-शुद्धि और आत्म-शुद्धि के लिए ही आरम्भ किया गया है। यदि कोई व्यक्ति इस अभियान में अपना सक्रिय सहयोग अर्पित करना चाहे तो वह किस जाति का है, किस वर्ग का है, किस सम्प्रदाय का है, ये प्रश्न मुझे बाधित नहीं करेंगे। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई सम्प्रदाय किसी को भी नहीं तार सकता। व्यक्ति स्वयं ही अपने को तार सकता है। सम्प्रदाय किसी का निर्माण नहीं कर सकते। व्यक्ति स्वयं ही अपना निर्माण कर सकता है। यह प्रसन्नता की बात है कि बहुत से जैनेतर लोगों ने इसे प्रसन्नता पूर्वक अपनाया है। सहस्रों और लाखों लोग इस योजना से प्रभावित हुए हैं और इस अनुष्ठान को गौरव के साथ देखते सुनते और मनन करते हैं।

सुधार का केन्द्र : व्यक्ति

अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति-सुधार की योजना है, फिर भी इसमें समाज, राष्ट्र और देश के कायाकल्प करने की शक्ति विद्यमान है। मैं मानता हूं कि व्यक्ति-सुधार सब सुधारों की सुदृढ़ भित्ति है। अगर व्यक्ति सुधार होता चला गया तो क्या समाज और राष्ट्र का सुधार पीछे रहेगा? कुछ प्रगतिशील व्यक्तियों के लिए यह उलझन बन जाती है। वे सोचते हैं कि ऐसे एक-एक व्यक्ति को समझा-बुझाकर अभीष्ट लक्ष्य तक कैसे पहुंचा जाएगा? किन्तु मेरे लिए यह कोई उलझन नहीं है। मैं इस उलझन में बिल्कुल नहीं उलझता। मेरी मान्यता है कि आत्मिक सुधार या दूसरे शब्दों में कहूंगा शुद्धि एक एक व्यक्ति को उठाये बिना सम्भव नहीं। समाज-सुधार की भावना व्यक्ति-सुधार के अभाव में व्यर्थ और थोथी है। क्या बिना किसी बुनियाद या भित्ति के भी मकान टिका रह सकता है? इसलिए व्यक्ति सुधार और व्यक्ति की अन्त शुद्धि की यह योजना प्रारम्भ में नदी की धारा की तरह लघु होते हुए भी आगे चलकर नदी की विस्तृत धारा की तरह विशाल कार्य रूप लिए हुए है।

आज तक समाज सुधार की जितनी योजनाएं बनीं वे एक साथ सारे समाज का उत्थान करने के लिए बनीं। परिणामत वे इसलिए सफल नहीं हो सकीं कि उनमें मूल भित्ति को सुदृढ नहीं किया गया था। कोई संस्था, समुदाय या योजना एक साथ सारे व्यक्तियों का उत्थान और चरित्र-निर्माण नहीं कर सकती। इसलिए यह निश्चित है कि जब तक व्यक्तिगत चरित्र-सुधार पर ध्यान नहीं दिया जायेगा, तब तक सामाजिक विषमताएं दूर होना सम्भव नहीं।

आर्थिक समस्या मुख्य नहीं

आज का युग अर्थ-प्रधान है। बहुत सारे लोग आर्थिक समस्या को ही देश की प्रधान समस्या मानते हैं। उनका कहना है कि अणुव्रत-योजना में आर्थिक समस्या का समाधान नहीं है। यह सुनकर मुझे इसलिए आश्चर्य होता है कि आज के भौतिकवादी युग में लोगों के सामने केवल आर्थिक समस्या का ही महत्त्व रह गया है। चरित्र-शुद्धि और आध्यात्मिकता से उन्हें कोई

मतलब नहीं। लोग यहां तक भी कहते हैं कि यदि इस योजना में आर्थिक प्रश्नों को सुलझाने का कोई मार्ग नहीं है तो यह योजना व्यापक नहीं है। मैं समझ नहीं पाता कि व्यापकता का तात्पर्य क्या है? व्यक्ति-व्यक्ति के मस्तिष्क से जो बात टकराये, जो व्यक्ति-व्यक्ति के मस्तिष्क तन्तुओं का स्पन्दन करा दे, क्या वह योजना व्यापक नहीं? आज तक का इतिहास बताता है कि किसी एक योजना को समूचा संसार अपना कर चले, यह न कभी हुआ है और न कभी होने वाला है। इतिहास के न जाने कितने-कितने प्रसिद्ध महारथी महापुरुष इस धरा पर आये, किन्तु उनके एक कदम के पीछे सारा संसार चला हो, ऐसा कोई भी युग नहीं मिलता। हमें भी यह गर्व नहीं है कि हम संसार को अपने पीछे चलायें। हमारा तो केवल यही लक्ष्य है कि जनहित साधक, सर्वहित साधक और आत्महित साधक जो कुछ भी हमारे पास है, उसे जन-जन के सामने प्रस्तुत करें। लोग उसे देखें, समझें, विचारें और अगर वह उन्हें अच्छा लगे तो ग्रहण करें। आज जहां अन्यान्य राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की बड़ी-बड़ी योजनाएं हैं, वहां हमारी यह सब समस्याओं की जड़ चारित्रिक समस्या को सुलझाने वाली एक छोटी-सी योजना है।

मुख्य समस्या चारित्रिक

एक बात जो मुझे अधिक बल से कहनी है, वह यह है कि आज लोगों का दृष्टिकोण गलत बन रहा है। लोग सोचते हैं कि अगर अर्थ की समस्या सुलझ जाये तो सब समस्याएं सुलझ जायें। मैं समझता हूं यह वैसी ही बात है जैसी कि जब स्वराज्य मिलने के पूर्व भारतीय नेता सोचा करते थे कि स्वराज्य मिल जाये तो सब समस्याएं सुलझ जायें। किन्तु स्वराज्य मिलने के बाद यह स्पष्ट है कि उनका यह सोचना गलत था। चूंकि आज समस्याएं और कठिनाइयां इस रूप में फैली हुई हैं कि वे हमें मानने को तैयार नहीं करतीं कि स्वराज्य आने के बाद सब समस्याएं सुलझ गईं और सुख का कल्पित स्वप्न साकार हो गया। आज भी मैं यही चेतावनी देना चाहता हूं कि अगर लोग यह सोचें कि आर्थिक समस्याएं सुलझते ही सारी समस्याएं सुलझ जायेंगी तो यह सोचना गलत होगा। इसके साथ मुझे यह भी कहना

है कि आर्थिक समस्या के कारण ही सब समस्याए फैली हुई है, यह भी मै नही मान सकता। यह दूसरी बात है कि आर्थिक समस्या ठोस है या नही— मेरी दृष्टि मे सबसे बड़ी समस्या चारित्रिक और नैतिक है। जिन देशों मे आर्थिक समस्या का समाधान हो पाया है, वहा पर चरित्र और नैतिकता का पूर्ण विकास हो, ऐसा भी नही माना जा सकता। अतएव मेरी तो यह मान्यता है कि आर्थिक समस्या के कारण अन्यान्य समस्याए बनी हुई है, ऐसा नही, बल्कि मनुष्य की आन्तरिक विषमताओं के कारण ही बहुत-सी आर्थिक व अन्यान्य समस्याए पैदा हुई है। इसी दृष्टिकोण को लेकर अणुव्रत-योजना मनुष्य के चारित्रिक विकास के लिए बनाई गई है। मेरा विश्वास है यदि चारित्रिक समस्या सुलझ गई तो अन्य समस्याओं के सुलझने मे विलम्ब न होगा।

समस्याओं का समाधान

एक समय था, जबकि भारतवर्ष ससार की हर समस्या को सुलझाने की योग्यता रखता था व समस्त देशों के गुरु पद पर आसीन था, पर आज वह स्वय समस्याक्रान्त है। आज हम सभी रोटी और कपड़े की समस्या मे ही उलझ गये है। इस युग मे भौतिकवाद का चक्र इस तरह घूमा कि भारत ही क्या, सारा ससार ही उससे प्रभावित हो गया। यद्यपि रोटी की समस्या कोई छोटी समस्या नही है। मुझे वह पद्य याद है—'बुभुक्षितै व्याकरण न भुज्यते, पिपासितै काव्यरसो न पीयते'— भूखा और प्यासा, व्याकरण और काव्य से अपनी भूख और प्यास को नही बुझा सकता। फिर भी मेरी दृष्टि मे इस समस्या का इतना महत्त्व नही है। मै नही मानता कि आज ससार एकमात्र अभाव के कारण ही दुःखी है। दुःखी होने का मुख्य कारण है, चारित्रिक पतन। आज जनता का नैतिक जीवन गिरता जा रहा है। जीवन के चारित्रिक मूल्यों को लोग भूले जा रहे है। फलत बेईमानी, असत्य आचरण, भ्रष्टाचार जैसे दुर्गुण मानवीय जीवन को घुन की तरह खाये जा रहे है। वास्तव मे असयत वृत्तियों के कारण ही अनेक समस्याए पैदा हुई हैं। अगर इन असयत वृत्तियों को सयत किया जाये तो अन्यान्य परिस्थितियों का समाधान भी मिल सकता है। यदि जीवन आडम्बरहीन,

उपत और लाचार हो तो वस्तुओं का इतना अभाव नहीं रहेगा जिसको लेकर समस्या खड़ी हो सके। मैं मानता हूं कुछ अंशों में बाह्य स्थिति सापेक्ष होते हुए भी मूलतः यह समस्या अन्तर-स्थिति सापेक्ष है। यदि अन्तर-स्थिति के परिमार्जन का प्रयास किया जाये तो मैं समझता हूं यह समस्या बहुत छोटी और नगण्य प्रतीत होगी तथा इसके सुलझने में विलम्ब नहीं होगा। अतएव आज सबसे अधिक इस बात की आवश्यकता है कि अनैतिकता की दानवीय फौज के विरुद्ध नैतिकता तथा सदाचार के सहारे एक लड़ाई छेड़ी जाये। अणुव्रत-आन्दोलन इसी तरह की एक सक्रिय और सजीव योजना है जो नैतिक अभ्युदय और चारित्रिक विकास को लेकर चलती है।

विरोध प्रगति का सूचक है

प्रत्येक अच्छी योजना में प्रायः विरोध आता ही है। विरोध एक संघर्ष है और संघर्ष से ही ज्योति पैदा होती है। जिस योजना का विरोध नहीं होता वह पनप नहीं सकती। विरोध से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। विरोध से घबराने वाले नष्ट हो जाते हैं और डटकर उसका सामना करने वाले विजय प्राप्त कर लेते हैं। इन दिनों अणुव्रत-योजना का जो विरोध किया जा रहा है मैं समझता हूं वह तो बिल्कुल ही नगण्य है। विरोधी बन्धुओं का कहना है कि 'आचार्यजी नाम प्रतिष्ठा और प्रख्याति के भूखे हैं और उसकी पूर्ति वे आन्दोलन के माध्यम से कर रहे हैं।' मैं कहता हूं उनकी यह बात मुझे स्वीकार है। यदि जन-जन के विकास का काम हो और उसमें अपना नाम हो तो इसमें हानि और अचरज जैसी क्या बात है? मेरा तो यह सदा का सिद्धान्त है—"काम पीछे नाम" केवल नाम से नुकसान है। काम के पीछे नाम अपने आप होता है किन्तु केवल नाम हानिप्रद है। नाम की भूख न रखते हुए काम में जुटे रहना हमारा उद्देश्य है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि साधुओं को इन लोक-संग्रह के कामों में पड़ने की क्या आवश्यकता है? उन्हें तो भजन सेवा और ईश्वर भक्ति आदि में अपना समय बिताना चाहिये। मैं मानता हूं भजन सेवा और ईश्वर-भक्ति द्वारा हम अपना कल्याण कर सकते हैं पर संसार का नहीं। हमें यह सदा से शिक्षा मिलती आई है कि हम अपने कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण भी

करें। ससार का कल्याण और उसको सम्पादित करने की भावना अपने कल्याण से परे की चीज नही है। ससार का कल्याण हो चाहे न हो, हमे तो अपने सत्प्रयत्न का फल मिल ही जाता है। अतएव हमे विरोध को विनोद और प्रगति का शुभ सकेत समझ कर उसका स्वागत करना चाहिये। मुझे वह बौद्ध साहित्य का एक प्रसग याद आ रहा है। गौतम बुद्ध का एक शिष्य धर्म-प्रचार के लिए बाहर जाने लगा। गौतम बुद्ध ने उसकी क्षमता की परीक्षा के निमित्त प्रश्न किया, "आयुष्मन्! तुम बाहर चले जा रहे हो, तुम्हे कोई पुरुष गालिया देगा तब ?" शिष्य ने तत्काल उत्तर दिया, "भगवन्! मै सोचूगा, चलो गालिया ही दी, पीटा तो नही।"

"अरे, कोई पीटेगा तब ?"

"मै समझूगा चलो पीटा ही हाथ-पैर तो नही तोडे।"

"अरे, कोई हाथ-पैर भी तोड देगा तब ?"

"मैं समझूगा चलो हाथ-पैर ही तोडे, प्राणान्त तो नही किया।'

"अरे, कोई प्राणान्त कर देगा तब ?"

"मै समझूगा चलो प्राणान्त ही हुआ, मेरी आत्मा और उसके गुणो का तो कुछ बिगडा ही नही।"

शिष्य के इन सरल व स्पष्ट उत्तरो को सुनकर गौतम बुद्ध ने पूर्ण प्रसन्नता के साथ आशीर्वाद देते हुए विदा किया और कहा—'ऐसी लगन वाले शिष्य ही प्रचार-कार्य मे सफल हो सकेंगे।' इस प्रसग से हमे यही शिक्षा लेनी है कि हम विरोधो से कभी घबरायें नही। हमे विरोध का प्रतिकार कार्य से करना है न कि थोथी आवाजो व अन्य गलत तरीको से। हमे अपने गुरुओ से यही शिक्षा मिली हुई है कि विरोध के सामने विरोध लेकर बढोगे तो विरोध बढेगा और यदि उसको पीठ देकर अपना कार्य करते रहोगे तो वह अपने आप खत्म हो जायेगा।

मैं समझता हू यदि विरोध न हो तो दुतरफा काम कैसे हो ? श्रीमद् भिक्षु स्वामी से किसीने कहा—"लोग आपमे अवगुण निकालते है। स्वामीजी ने कहा—यह तो अच्छा ही है, हमारा दुतरफा काम हो रहा है। अवगुण हमे रखने थोडे ही हैं। कुछ हम निकाल रहे है और कुछ लोग निकाल देंगे।"

संयत और सादा हो तो वस्तुओं का इतना अभाव नहीं रहेगा जिसको लेकर समस्या खड़ी हो सके। मैं मानता हूं कुछ अर्थों में बाह्य स्थिति सापेक्ष होते हुए भी मूलतः यह समस्या अन्तर-स्थिति सापेक्ष है। यदि अन्तर-स्थिति के परिमार्जन का प्रयास किया जाये तो मैं समझता हूं यह समस्या बहुत छोटी और नगण्य प्रतीत होगी तथा इसके सुलझने में विलम्ब नहीं होगा। अतएव आज सबसे अधिक इस बात की आवश्यकता है कि अनैतिकता की कालकीय फौज के विरुद्ध नैतिकता तथा सदाचार के सहारे एक लड़ाई छेड़ी जाये। अणुव्रत-आन्दोलन इसी तरह की एक सक्रिय और सजीव योजना है जो नैतिक अभ्युदय और चारित्रिक विकास को लेकर चलती है।

विरोध प्रगति का सूचक है

प्रत्येक अच्छी योजना में प्रायः विरोध आता ही है। विरोध एक संघर्ष है और संघर्ष से ही ज्योति पैदा होती है। जिस योजना का विरोध नहीं होता वह पनप नहीं सकती। विरोध से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। विरोध से घबराने वाले खत्म हो जाते हैं और डटकर उसका सामना करने वाले विजय प्राप्त कर लेते हैं। इन दिनों अणुव्रत-योजना का जो विरोध किया जा रहा है मैं समझता हूं वह तो बिल्कुल ही नगण्य है। विरोधी बन्धुओं का कहना है कि 'आचार्यजी नाम प्रतिष्ठा और प्रख्याति के भूखे हैं और उसकी पूर्ति वे आन्दोलन के माध्यम से कर रहे हैं।' मैं कहता हूं उनकी यह बात मुझे स्वीकार है। भला जन-जन के विकास का काम हो और उसमें अपना नाम हो तो इसमें हानि और घबराने जैसी क्या बात है? मेरा तो यह सदा का सिद्धान्त है—"काम पीछे नाम केवल नाम से नुकसान है।" काम के पीछे नाम अपने आप होता है किन्तु केवल नाम हानिप्रद है। नाम की भूख न रखते हुए काम में जुटे रहना हमारा उद्देश्य है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि साधुओं को इन लोक-संग्रह के कामों में पड़ने की क्या आवश्यकता है? उन्हें तो भजन सेवा और ईश्वर-भक्ति आदि में अपना समय बिताना चाहिये। मैं मानता हूं भजन सेवा और ईश्वर-भक्ति द्वारा हम अपना कल्याण कर सकते हैं पर संसार का नहीं। हमें यह सदा से शिक्षा मिलती आई है कि हम अपने कल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण भी

करें। ससार का कल्याण और उसको सम्पादित करने की भावना अपने कल्याण से परे की चीज नही है। ससार का कल्याण हो चाहे न हो, हमे तो अपने सत्प्रयत्न का फल मिल ही जाता है। अतएव हमे विरोध को विनोद और प्रगति का शुभ सकेत समझ कर उसका स्वागत करना चाहिये। मुझे वह बौद्ध साहित्य का एक प्रसग याद आ रहा है। गौतम बुद्ध का एक शिष्य धर्म-प्रचार के लिए बाहर जाने लगा। गौतम बुद्ध ने उसकी क्षमता की परीक्षा के निमित्त प्रश्न किया, "आयुष्मन्! तुम बाहर चले जा रहे हो, तुम्हे कोई पुरुष गालिया देगा तब?" शिष्य ने तत्काल उत्तर दिया, "भगवन्! मै सोचूगा, चलो गालिया ही दी, पीटा तो नही।"

"अरे, कोई पीटेगा तब?"

"मै समझूगा चलो पीटा ही हाथ-पैर तो नही तोडे।"

"अरे, कोई हाथ-पैर भी तोड देगा तब?"

"मैं समझूगा चलो हाथ-पैर ही तोडे, प्राणान्त तो नही किया।"

"अरे, कोई प्राणान्त कर देगा तब?"

"मै समझूगा चलो प्राणान्त ही हुआ, मेरी आत्मा और उसके गुणो का तो कुछ बिगडा ही नही।"

शिष्य के इन सरल व स्पष्ट उत्तरो को सुनकर गौतम बुद्ध ने पूर्ण प्रसन्नता के साथ आशीर्वाद देते हुए विदा किया और कहा—'ऐसी लगन वाले शिष्य ही प्रचार-काय मे सफल हो सकेंगे।' इस प्रसग से हमे यही शिक्षा लेनी है कि हम विरोधो से कभी घबराये नही। हमे विरोध का प्रतिकार कार्य से करना है न कि थोथी आवाजो व अन्य गलत तरीको से। हमे अपने गुरुओ से यही शिक्षा मिली हुई है कि विरोध के सामने विरोध लेकर बढ़ोगे तो विरोध बढेगा और यदि उसको पीठ देकर अपना कार्य करते रहोगे तो वह अपने आप खत्म हो जायेगा।

मै समझता हू यदि विरोध न हो तो दुतरफा काम कैसे हो? श्रीमद् भिक्षु स्वामी से किसीने कहा—"लोग आपमे अवगुण निकालते है। स्वामीजी ने कहा—यह तो अच्छा ही है, हमारा दुतरफा काम हो रहा है। अवगुण हमे रखने थोडे ही है। कुछ हम निकाल रहे है और कुछ लोग निकाल देंगे।"

स्वामीजी का यह अप्रत्याशित उत्तर सुन कर पूछने वाला चुप रह गया।

यह भी होता है कि जब मनुष्य अच्छे मार्ग पर चलता है तो उसे वहाँ से फिसलाने के लिए बहुत से व्यक्ति अनेक बाधाएं उपस्थित किया करते हैं। जैसे रामायण की एक घटना है, जब वे राज-भवन छोड़ कर पूर्ण समाधि अवस्था में पहुँचने लगे—जैन शास्त्रों में क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होने लगे—उस समय सीतेन्द्र ने उनको विचलित करने के लिए अनेक प्रकार के भय और प्रलोभन दिखाये। किन्तु वे अपने मार्ग से तिल भर भी नहीं डिगे। इस बात से सबको यही शिक्षा मिली है कि पग-पग बाधाओं को चीरते हुए आगे बढ़ना है। विरोध और बाधाओं के रहस्य को समझने के बाद वे प्रगति में बाधक नहीं प्रत्युत प्रगति के साधक सिद्ध होते हैं।

आत्म-दमन का सूत्र

अणुव्रत-आन्दोलन का यही आदर्श है कि मनुष्य दूसरे का दमन करने का प्रयत्न न करे। अपनी बुराइयों व अपनी असद् वृत्तियों को दमन करने की कोशिश करे। यही भगवान् महावीर की वाणी है, यही गौतम बुद्ध ने कहा है और यही श्रीकृष्ण ने भगवद् गीता में बतलाया है। भगवान् महावीर की वाणी में—

अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य।

'मनुष्य को अपने आपका दमन करना चाहिये। वास्तव में यही कठिन है। अपने आपका दमन करने वाला इस लोक और परलोक में सुखी होता है।' इसीलिए आगे कहा है—

'अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ'

'आत्मन्! यदि तू युद्ध-प्रेमी है तो तुझे अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये। बाहरी संग्राम से क्या लाभ है?' इसलिए मनुष्य के लिए यही श्रेय है कि वह सोचे—

'वरं मे अप्पा दन्तो संजमेण तवेण य।
माहं परेहिं दम्मन्तो बन्धणेहिं वहेहि य।

'अच्छा है, मैं पहले ही संयम और तप के द्वारा अपने आप ही अपना दमन कर लूं। अगर दूसरे लोग बन्धनादि से मेरा दमन करेंगे तो फिर

क्या आनन्द रहेगा ?' बन्धुओ ! इन ऋषि-वाक्यों को पुनः पुनः याद रखिये। मेरा यह निश्चित अभिमत है कि चाहे कोई हो, कोई समाज हो या कोई योजना, वाद हो या चाहे कोई कार्यक्रम, सारे ही तब तक सफल नहीं हो सकते व आगे नहीं बढ़ सकते, जब तक कि उनमें आत्म-दमन और आत्मानुशासन को बल व प्रश्रय नहीं दिया जाता। मैं समझता हूं यदि प्रत्येक व्यक्ति इस 'आत्म-दमन' के महत्त्वपूर्ण सूत्र को अपने जीवन में स्थान देगा तो इससे जीवन की समस्त विषमताएं और समस्याएं मिटेंगी, सात्त्विकता, सदाचार एवं चरित्र-निष्ठा का विकास होगा, जिससे समाज एक अभिनव शान्ति का अनुभव कर सकेगा।

[१५ अक्टूबर, १९५३ को जोधपुर (राजस्थान) में अणुव्रत-आन्दोलन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर प्रदत्त मंगल प्रवचन]

: ११ :

आत्म दमन

आज जिन अणुव्रती भाई बहिनों ने त्याग की आदर्श परम्परा को स्वीकार किया है वह कोई नई परम्परा नहीं है। भारतीय संस्कृति की यह मौलिक परम्परा प्राचीन काल से भारतीय जीवन का विशिष्ट अंग रहती आई है। भारतीय संस्कृति के उपासक व प्रसारक ऋषि-मुनियों ने इस परम्परा का सृजन किया और जिसका इतिहास प्राचीन काल की शृंखला में अत्यन्त सुन्दर रहा है। प्रसन्नता की बात है—आज भी साधु-समाज के अतिरिक्त अपने गृह जीवन को मर्यादा में रखने वाले ऐसे भाई-बहिन भी समाज के सामने आये हैं जिन्होंने इस त्याग-प्रधान परम्परा को अपने जीवन में जागृत कर आज के इस भौतिकवादी युग के सम्मुख एक प्रभावशाली चुनौती प्रस्तुत की है। पुराने महर्षि कह गये हैं—

> अप्पा हु खलु सययं रक्खियव्वो सव्विन्दिएहिं सुसमाहिएहिं।
> अरक्खिओ जाइपहं उवेइ सुरक्खिओ सव्व दुहाण मुच्चइ॥

सब इन्द्रियों को काबू में कर आत्मा की असद् प्रवृत्तियों से उसकी हर पल रक्षा करनी चाहिये। जो आत्मा सुरक्षित नहीं होती वह विभिन्न योनियों में अनेक प्रकार के कष्टों को भोगती हुई संसार में भटकती रहती है। जो आत्मा सुरक्षित होती है, वह सब दुःखों से छुटकारा पा लेती है। आत्म-नियन्त्रण का यह उपदेश भारतीय ऋषियों की वाणी का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग रहा है। कहा गया है—

> न तं अरि कण्ठछेत्ता करेइ जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
> से नाहिइ मच्चु मुहं तु पत्ते पच्छाणु तावेण दयाविहूणो॥

जितना अपकार यह दुरात्मा करती है उतना अपकार एक-एक कण्ठ

छेदने वाला शत्रु भी नही करता। इस दुराचारी आत्मा को अपने दुराचरणो का पहले ध्यान नही आता, परन्तु जब वह मृत्यु के मुख मे पहुचती है, तब अपने दुराचरणों को याद कर-कर पश्चात्ताप करती है। यही बात भगवद् गीता मे इन शब्दो मे कही गई है—

'आत्मैव आत्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मन,
उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत्।'

आत्मा ही आत्मा का मित्र है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। ऐसी स्थिति मे आत्मा को अनियन्त्रित छोड कर दुर्गुणो के प्रवाह मे कभी बहने न दे। मुझे खुशी है कि आज अणुव्रतियो ने कुछ अशो मे आत्म-नियत्रण को अपना कर इस ऋषि-वाणी को सही करने का सफल प्रयास किया है।

वास्तव मे अणुव्रती वे ही बन सकते है, जिनकी अहिसा आदि सदाचार-मूलक वृत्तियो मे निष्ठा होती है। अणुव्रत-योजना मे अहिसा आदि के प्रति श्रद्धा को गहरा स्थान दिया गया है। यह योजना मानव-जीवन की एक मर्यादा—एक मापदण्ड है। 'मानव कौन ?' वही जो अणुव्रती है। अणुव्रतो का स्तर उस सीमा को छूने वाला है कि जिससे बाहर रहने वाला व्यक्ति सही अर्थ मे मानव और नागरिक नही कहला सकता। अणुव्रत के साथ जो 'आन्दोलन' शब्द जोडा गया है, उसका तात्पर्य यही है कि उसके द्वारा जन-जन मे प्रेरणा, स्फूर्ति और उत्साह जागृत किया जाये। यह इसलिए कि आज लोगो के जीवन मे इन चीजो का बहुत बडा अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। मैं चाहता हू—अणुव्रतियो यानि नैतिक व्यक्तियो को हर तरह से बल-प्रदान किया जाये। नैतिक व्यक्तियो का सगठन जितना बलवान होगा, उतना ही समाज, देश और राष्ट्र का नैतिक स्तर उन्नत और सस्कारित बनेगा। इसलिए मैं सबसे आह्वान करूगा कि वे अपने आपका आन्दोलन समझ कर इसे आगे बढाने के लिए पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करें। यह नैतिक आजादी की लडाई है और इसमे सक्रिय भाग लेकर इसको सफल बनाना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है। इस लडाई मे बलिदान चाहिये, किन्तु मनुष्यो का नही, बल्कि मनुष्य के दुर्गुणो का, बुराइयो का और स्वार्थों का।

कुछ शब्द अणुव्रती भाई-बहिनो से भी कहना चाहूगा। आप लोगो ने

मजबूत मनोबल हो ऐसा,
कायरता कभी न लाये हम ॥

इस भावना को लेकर अणुव्रती निष्ठापूर्वक आगे बढे। उन्हे हर पल आत्म-चिन्तन और आत्मालोचन करते रहना चाहिये। प्रतिक्षण यह ध्यान रहना चाहिये कि कही नियमो मे भग तो नही हो रहा है। उनकी निगरानी के लिए उनके पीछे न तो कोई सिपाही है और न कोई सी आई डी ही आयेगे और न मै या कोई साधु-साध्वी ही। उनकी अपनी आत्मा ही उनके साथ रहेगी। स्वय को ही अपने पर नियन्त्रण रखना होगा। वे दृढ निष्ठा और मजबूत आत्मबल के साथ अपनी मर्यादा को समझदारी पूर्वक पालते हुए आगे बढते जायें तथा औरो के लिए एक प्रभावशाली प्रेरणा प्रस्तुत करे। चरित्र-निर्माण की इस पुनीत जल-धारा को अपने जीवन के जल कण समर्पित कर आगे अग्रसर करने का एक प्रभावशाली प्रयास करे।

[१८ अक्टूबर, १९५३ को जोधपुर (राजस्थान) मे अणुव्रत-आन्दोलन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

। १२

सुविधाओं से पराभूत न हों

अणुव्रत-योजना चालू की गई। इसका प्रचार हुआ। लोगों में आत्म जागृति आई। समाज में हलचल मची। लोगों ने योजना की सराहना की। विरोध करने वालों ने विरोध भी किया। कहा—क्या आवश्यकता थी ऐसे संघ की व्यवस्था करने की? क्या साधुओं को संघ संचालित करना उचित है? पर आम जनता तो जीवन-उत्थान कैसे हो आत्मिक सुख और शान्ति कैसे मिले यह जानना चाहती है। उसके दिमाग में ये निकम्मे तर्क नहीं आते। वे तो दिमाग से समझते हैं और श्रद्धा से उन्हें अपना लेते हैं। इन तर्कों को तो उन लोगों के लिए ही छोड़ देना चाहिए, जिनके दिमागों में ये उत्पन्न होते हैं।

अणुव्रती-संघ और उसकी योजना ठीक उसी तरह सम्बन्धित है जैसे श्रावक-संघ और व्रतों की योजना है। श्रावकपन वही तो है जिसमें त्याग है जीवन को संयममय बनाने का प्रयत्न रहता है। ऐसे ही व्यक्तियों का संघ श्रावक-संघ है। भगवान् महावीर ने श्रावक-श्राविका साधु-साध्वी संघ की स्थापना की थी और उसका संचालन किया था। तीर्थंकरों आचार्यों और साधु-संघों द्वारा उसका संचालन हुआ है और होगा। पर वे श्रावक भी गृहस्थ ही होते थे। लौकिक कार्य भी करते थे। विवाह-शादी उत्सवादि सभी करते थे। ये कार्य श्रावकपन में नहीं। इनका संचालन वे नहीं करते थे। ठीक इसी तरह अणुव्रती-संघ है। इसके त्याग का संचालन हम करते हैं। हम ही नहीं भूतकाल में तीर्थंकरों एवं आचार्यों द्वारा अणुव्रतों का—छोटे-छोटे व्रतों का प्रचार हुआ है और होगा।

लोग निःसंकोच अणुव्रती बने और उनका आनन्दपूर्वक पालन किया। इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें बाधाओं का सामना न करना पड़ा हो। वे आज के इस वातावरण के प्रति विचारशील बने और जो मूल लक्ष्य था उसे

नहीं छोड़ा। इसी तरह नये बनने वाले अणुव्रती भी आने वाली कठिनाइयों को चीर कर उन पर विजय पायें। उनके सामने हार कर सिर न झुका दें।

त्याग की होड

आजकल लोग आडम्बर, आरम्भ व फिजूलखर्ची मे होड करने के लिए तैयार रहते है। उन्हे चाहिये कि वे त्याग मे होड करे। एक व्यक्ति अणुव्रती बनता है तो दूसरा भी बनने की भावना रखे। किन्तु इस युग मे लोगो की मनोवृत्ति कुछ भिन्न हो चली है। उन्हे जहा कुछ अर्थ-लाभ होना हो, स्वार्थ सधता हो, वहा तो बिना प्रेरणा के ही तत्पर हो जाते है। कुछ लोगो ने पहले-पहल बर्फ की फैक्टरी खोली। उसमे काफी लाभ हुआ। लोगो मे यहा तक होड लगी कि छोटे-छोटे कस्बो तक मे फैक्टरिया खुल गई। लोगो को चाहिये था कि वे इसमे (अणुव्रती-सघ मे) भी बिना किसी प्रेरणा के स्वत आते। पर यह कार्य आसान नही, दुविधाओ से भरा है। फिर भी जो आत्मिक सुख, शान्ति और निर्भीकतामय जीवन बनाना चाहता है, उसके सामने वे कुछ भी नही है। अत अधिक मे अधिक व्यक्ति अणुव्रती बनें। यदि आजीवन के लिए वे त्याग न भी कर सकें तो साधना ही करें और देखें कि शान्त और उन्नत जीवन के लिए अणुव्रत कितने जरूरी है।

महाशठ

कुछ व्यक्तियो का जीवन ऊपर से सीधा-साधा लगता है। मच पर वे अच्छा भाषण देते है, पर उनके अन्तर मे जो बुराइया होती है, उनकी गणना तक कर सकना कठिन है। सूत्रकृताग सूत्र मे एक जगह आया है—कुछ देखने मे और, प्रवचन-पडाल पर बोलने मे तो शुद्ध मालूम देते हैं, पर पर्दे के पीछे वे जो पाप, दुष्कृत्य और अनर्थ आदि करते है, उनसे उनकी आत्मा सकोच तक नही करती। ऐसे शठ, उन व्यक्तियो से कही अधिक खतरनाक है, जो इन कार्यों मे ख्याति-प्राप्त है। वह छिपा गड्ढा है। एक गड्ढा दीखता है, उसमे जान-बूझकर कोई नही पडेगा, परन्तु उस पर यदि चादर बिछा दी जाये और बैठने के लिए कहा जाये या किसी को बिठाया जाये तो वह उसमे गिर जायेगा। यही नही, वह कहेगा मेरे साथ धोखा किया गया। ठीक इसी तरह छिपा दुराचार करने वाला महाशठ है। वह यह समझकर कि मै भी एक प्राणी हू, मुझे

भी एक दिन मरना है, सदा नहीं रहना है, इस वृत्ति का लोप है। वह अपने पेट में रही बुरी-वृत्तियों को निकाल दे, अन्यथा वह महर्षियों की वाणी में तो पापी है ही, पर लोक दृष्टि में भी निन्दनीय है।

कथनी और करनी का समान भाव

यदि जन-जीवन को उठाना है तो कथनी और करनी को समान बनाना होगा। करनी से पूर्व कथनी प्रकृति-विरुद्ध है। एक बच्चा भी तभी बोलता है, जब वह करना सीख लेता है। यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज के तथाकथित सुधारकों में इसकी बड़ी कमी है। वे लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं पर वे स्वयं उन सिद्धान्तों का कितना पालन करते हैं? यह प्रश्न केवल तर्क के सहारे समाधान नहीं पाता। इसलिए कहने के पूर्व वे अपने जीवन को उनमें कथनी के अनुरूप बनायें और जनता को फिर अपने पीछे ले चलने का प्रयत्न करें।

[२३ सितम्बर, १९५८ को सरदारशहर (राजस्थान) में अणुव्रत-आन्दोलन के तृतीय वार्षिक अधिवेशन में प्रथम सत्र प्रवचन]

: १३ :

आर्थिक दृष्टि के दुष्परिणाम

अणुव्रती-सघ का पहला वार्षिक अधिवेशन दिल्ली मे हुआ। दूसरा लुधियाना की इस पुण्यभूमि मे हो रहा है। आप कहेगे—जहा थोडे समय पूर्व अमानवीय हत्याकाण्ड हुए, वह भूमि भला पुण्यभूमि ? अवश्य अहिंसा के प्रतीक साधु-साध्विया जिस भूमि पर बैठे है और जहा अहिंसानिष्ठ अणुव्रती-सघ का अधिवेशन हो रहा है, क्या मै उस भूमि को पुण्यभूमि न कहू ?

जनता इस कार्यक्रम को मौखिक भाषण या कोरी कागजी कार्यवाही ही न समझे। यह चरित्र-सुधार का स्थायी रूप है। अणुव्रती जो प्रतिज्ञाए स्वीकार करते है, वे दिल मे करते हैं और उनका पूर्ण रूप मे पालन करते है।

यह सघ बुराइयो के मूल पर प्रहार है। लोग यह नही समझ रहे है कि बुराई क्या है ? दृष्टिकोण गलत हो रहा है, बुराई यही है। आज की दुनिया की दृष्टि धन पर टिकी हुई है। धन के लिए ही जीवन है, लोग यो मान बैठे हैं, यही दृष्टि-दोष है—नास्तिकता है। जीवन का मूल्य धन-सग्रह नहीं, वह अमूल्य है। जो वस्तु जैसी नही, उसको वैसी मान लेना ज्यो मिथ्यात्व है, त्यों साधन को साध्य मान लेना क्या नास्तिकत्व नही ? धन जीवन के साधनो मे से एक है, साध्य तो है ही नही। उक्त दृष्टि-दोष का परिणाम पहली मजिल मे शोषण और आखिरी मजिल मे युद्ध है। व्यापारियो मे ब्लैक, राज्यकर्मचारियो मे रिश्वत, राजनैतिको मे स्वार्थ और पक्षपात आज असाध्य रोग बने हुए है। इनकी चिकित्सा के लिए दृष्टिकोण को बदलना आवश्यक है। त्याग और सयम के सहारे आगे बढना सम्भव है, अन्यथा नही।

अणुव्रत-योजना जीवन-विकास की एक दृष्टि है, एक सिद्धान्त है। भारत

स्वतन्त्र बन चुका किन्तु व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं बना। आन्तरिक स्वतन्त्रता के बिना बाहरी स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती। यही कारण है कि लोगों को आजादी का वैसा आनन्द नहीं आया जैसा वे सोचते थे। पर परतन्त्रता का मूल कहाँ है और क्या है, यह इसे गहराई से खोजना होगा। मैं विस्तार में नहीं जाऊँगा। आज नहीं तो कल आखिर यह मानना होगा कि मनुष्य आदतों का दास बना हुआ है और यही परतन्त्रता का बीज है।

लोग कहते हैं—जरूरत की चीजें कम हैं। रोटी नहीं मिलती, कपड़ा नहीं मिलता, घर नहीं मिलता, यह नहीं मिलता। किन्तु मेरा अनुभव कुछ और है। मैं मानता हूँ कि जरूरत की चीजें कम नहीं। जरूरतें बहुत बढ़ चलीं, संघर्ष यह है। इसमें से अशान्ति की चिनगारी निकलती है। एक पर नहीं अनेक चीजों पर कन्ट्रोल है, पर उससे बने क्या, जब तक कि जनता अपने आप इन्द्रियों पर और मन पर दूसरे शब्दों में अनैतिकता पर कन्ट्रोल न करले। सफलता की मूल पूँजी जनता की भावना है। उसका विकास संयममूलक प्रवृत्तियों के अनुशीलन से ही हो सकता है।

नैतिक उत्थान व्यक्ति तक ही सीमित रहा तो उसकी गति मन्द होगी। इसलिए इस दिशा में सामूहिक प्रयास आवश्यक है। यह प्रश्न हो सकता है और होता भी है। इसका उत्तर भी सीधा है—मैं न तो राजनीतिक नेता हूँ न मेरे पास कानून और न डण्डे का बल है। मैं तो अपनी आत्मा का नेता हूँ। मेरे पास आत्मानुशासन और आध्यात्मिक बल है। डण्डे के बल पर होने वाला कार्य स्थायी और स्वस्थ नहीं होता। कानून बनाने वाले बनाते रहते हैं, लोग उसकी छान-परीक्षा करते हैं, नाना रास्ते खोजते हैं। सरकार डाल डाल पर चलती है तो जनता पत्ते-पत्ते पर। काम कैसे बने? नैतिकता और मानवता का आधार हृदय-शुद्धि है। हृदय बदले बिना कोरी कानूनी कार्यवाहियों से कुछ बनने का नहीं। लोग बुराई को बुराई समझ कर ही चुप न रहें। उससे मुख्यतया अपनी आत्मा का साथ-साथ समाज और राष्ट्र का भी पतन होता है। इसलिए उसे छोड़ें।

बहुत लोग कहते हैं—अणुव्रती-संघ अच्छा है। नियम बड़े सुन्दर हैं। इससे हमारा बड़ा कल्याण हो सकता है। किन्तु मैं किसी के केवल मौखिक सहयोग से ही प्रसन्न होने वाला नहीं हूँ। मुझे सक्रिय सहयोग चाहिये। जनता से

अपेक्षा है कि नैतिकता के इस यज्ञ मे वह अपने स्वार्थों की आहुति दें । इससे सबका कल्याण होगा ।

युग की कठिनाइयो के बावजूद भी सघ के सदस्यो की सख्या इस वर्ष ६०० से बढकर १००० तक पहु च चुकी है । यह सघ की सावभौमता और सत्यनिष्ठा का ही परिणाम है । यद्यपि मुझे सख्या का मोह नही है, फिर भी सत्याचरण के साथ-साथ यदि सख्या बढे तो वह विशेष महत्त्व की बात होती है ।

अणुव्रती-सघ का सभी दृष्टियो से विकास हो रहा है, यह प्रसन्नता की बात है । अणुव्रती भाइयो और बहिनो ने कठिनाइयो से लड़ने मे जो नैतिक बल रखा, उसका हार्दिक स्वागत है । अणुव्रती भाइयो और बहिनो ! आगे भी जमाने की कठिनाइयो से आपको लडना है और विजयी बनना है । उनके सामने घुटने नही टेकने है । मुझे विश्वास है कि आप अपने लक्ष्य मे पूर्णतया सफल होगे ।

[२ मई, १९५१ को लुधियाना (पजाब) मे अणुव्रती-सघ के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन मे प्रदत्त मगल प्रवचन]

१५ |

वार्षिक पर्यवेक्षण

अणुव्रती-संघ का आज यह द्वितीय वार्षिक सम्मेलन-अधिवेशन हो रहा है। पहला सम्मेलन अधिवेशन दिल्ली में हुआ था। कल दूसरा अधिवेशन होने वाला है। उसमें फिर सारे अणुव्रती समाज के समक्ष एक अनूठा आदर्श उपस्थित करेंगे। अधिवेशन में भाग लेने के लिए काफी संख्या में अणुव्रती आ चुके हैं और कई कुछ एक कारणों से न भी आ सके हैं उनमें से बहुतों की स्वीकृति मिल चुकी है। अधिवेशन में आने वालों को अधिक दूरी आदि के कारण दिक्कतें भी काफी उठानी पड़ी हैं। कई राजस्थान से आये हैं तो कई देहली, बंगाल, मद्रास, मध्यभारत आदि विभिन्न प्रान्तों से। इस समारोह में सम्मिलित होने के लिए सारे ही बड़े हर्ष के साथ आये हैं।

अब दो वर्ष निकल चुके हैं। एक वर्ष साधना की अवधि का और दूसरा वर्ष त्याग का। देहली में ६२१ व्यक्ति चाँदनी चौक में बड़े हर्ष के साथ प्रतिज्ञाबद्ध हुए थे। जिससे संसार में कितना बड़ा प्रकाश फैला था यह प्रायः अणुव्रती जानते ही होंगे। अमेरिका इंग्लैंड तक के लोगों के मन में नैतिकता के प्रति एक नया आकर्षण हुआ था। इस एक वर्ष की अवधि में मैं समझता हूँ कि अणुव्रतियों का आत्मबल और अधिक बढ़ा है और क्वचित् होने वाली त्रुटियों के प्रति ग्लानि भी हुई है। मेरे पास ऐसे कई व्यक्ति आये और उन्होंने सुनाया—हम अमुक स्थान पर जा रहे थे। देरी अधिक हो जाने व भीड़ अधिक होने के कारण हम टिकट नहीं ले सके। आवश्यक कार्यवश यात्रा करनी पड़ी। भविष्य में हम सावधान रहेंगे। कइयों ने अपने इस एक वर्षीय जीवन की आलोचना करते हुए कहा—राज्य-निषिद्ध चोरबाजार के नियम में पता न चलने से एक-दो बार दो-चार आदमी अधिक

हो गये थे। फिर उसका पता चला, पर बाद मे क्या हो ? अब उसकी आलोचना करना चाहते हैं। कुछ एक ने कहा—अक्सर हमारी यह प्रवृत्ति थी कि बच्चो को बहुधा मार पीट देते थे, पर अणुव्रती होने के बाद हमारी इस प्रवृत्ति मे बहुत अन्तर हुआ है, तथापि दो-चार बार इस वर्ष की अवधि मे ऐसी प्रवृत्ति हुई है। सभी ने कहा हम अपनी इन त्रुटियो का प्रायश्चित्त करना चाहते हैं। इन सब बातो को सुनने से यह प्रतीत हुआ कि अणुव्रतियो के जीवन मे काफी परिवर्तन हुआ है और बुरी प्रवृत्तियो को अतिशीघ्र छोडने की भावना जागृत हो उठी है। उन्होने अपना अनुभव सुनाते हुए कहा कि अणुव्रती होने के बाद हम निर्भय बने हैं और जीवन की जटिल पहेलियो को सुलझा रहे हैं।

कुछ अणुव्रती ऐसे भी मेरे पास आये, जिन्होंने इस वष गलती नही की। यह सभी के लिए हर्ष की बात है। लेकिन जिन अणुव्रतियो की गलती हुई है, उनके बारे मे यह नही सोचना चाहिये कि इन्होने गलती की है और ये गलती करते रहते है। जान-बूझकर कोई गलती नही करना चाहता। अज्ञानवश कभी किसी की त्रुटि हो जाती है। सब समान नही होते। हाथ की अगुलिया भी एक समान नही होती, उसी प्रकार अणुव्रती भी सब समान नही होते। किसी की कभी अज्ञानवश त्रुटि हो जाती है, पर उसके पीछे बेपरवाही नही होनी चाहिये। त्रुटि के प्रति आत्मालोचन की एक तडफ होनी चाहिये। सभी अणुव्रतियो को आवश्यक है कि वे कभी भी कोई गलती न करें। यदि अज्ञानवश हो भी जाये तो उससे निवृत्त होने का प्रयत्न करें। गलती होना कोई इतनी बडी बात नही, पर उसको स्वीकार न करना या उस पर आत्म-ग्लानि न करना मूर्खता है। वह सघ के प्रति एक लाछन का कार्य है। हमेशा सचेष्ट रहना चाहिये कि ऐसी प्रवृत्ति न हो जाये, जिससे सघ को लाछन लगे। मुझे अधिक व्यक्तियो की आवश्यकता नही, यदि वे ग्रहण किये हुए नियमो को पूर्ण रूप से न पालते हो। मै थोडी ही सख्या मे अधिक कार्य समझूगा। यदि सघ मे आये हुए व्यक्ति अपने कर्तव्य-पथ पर डट कर नियमो को पालते हुए आगे बढ़ेंगे। मै बहुत बार कहता हू—मुझे सख्या का लोभ नहीं, जितने भी अणुव्रती हो, सच्चे हो और अपने आदर्श पर-

अडिग रहने वाले हो।

आज का युग विषम है। एक-एक समस्या आती है और बढ़ती जाती है। उसका थोड़ा भी हल दृष्टिगोचर नहीं होता। युग की गतिविधि को देखते हुए आगे बढ़ना कोई और नियम करना दुष्कर ही नहीं अपितु दुःसाध्य-सा प्रतीत होता है। तो भी बड़े हर्ष की बात है कि यह साधु-समाज उन सब विपत्तियों को झेलता हुआ अपने लक्ष्य-बिन्दु की ओर अग्रसर हो रहा है तब क्यों नहीं युग का सामना करते हुए अणुव्रती उससे आगे बढ़ पायेंगे।

हांसी अधिवेशन के अवसर पर यह आदेश दिया गया था कि प्रत्येक अणुव्रती को साथ-साथ अणुव्रती बनाने का यथासम्भव प्रयत्न करना होगा। मैं पूछना चाहता हूं कि इस ओर कितने व्यक्तियों ने प्रयास किया तथा सच की ओर कितने व्यक्तियों को आकृष्ट किया। यह प्रत्येक को आवश्यक होगा कि वे इसके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें।

आगामी अधिवेशन के लिए कुछ सोचा जा रहा है कब करना चाहिये। उसके लिए कई सुझाव आये हैं। उनमें एक सुझाव यह भी है कि आगामी भाद्रपद मास में अधिवेशन होना चाहिये। इसके लिए अभी तक कुछ सोचा नहीं गया है। यह विचाराधीन है। आगे इस पर विचार किया जायेगा कि यह किस मास में और कहां होना चाहिये।

[२ मई, १९५१ को लुधियाना (पंजाब) में अणुव्रती-संघ के द्वितीय वार्षिक अन्तरंग अधिवेशन में प्रदत्त सन्देश]

: १५ :

जीवन का मोह और मृत्यु का भय

अणुव्रती-सघ एक आत्मोन्मुख सस्था है। इसका ध्येय चरित्र-विकास है। यह आचारात्मक सस्था है, प्रचारात्मक नही—इस बात को सामने रखते हुए अणुव्रतियो को प्रगति पथ पर बढना है जीवन को आगे बढाना है। जिस काम के करने से आत्मा का निर्माण हो, ऐसा काम अणुव्रतियो को करना है और उसीके अनुसार समाज व राष्ट्र का निर्माण करना है।

एक ओर वर्तमान परिस्थितिया है, दूसरी ओर अणुव्रतो का कठिन मार्ग है। भगवान् श्री महावीर की उक्ति है—'जब दुनिया अनुस्रोतो मे बहती हो तो भव्य-आत्मा प्रतिस्रोत मे बहे।' आज अणुव्रती को समूची दुनिया की परिस्थिति के प्रतिकूल बहना है। किन्तु कठिनाइयो से घबराने की आवश्यकता नहीं है। कठिनाइयो को धैर्य से पार करना होगा। धैर्य-धारी मनुष्य सभी कठिनाइयो से साधारणत मुक्त हो जाता है और धैर्य-हीन व्यक्ति अपने आपको खो देता है। वैसे तो कठिनाइया कुछ नहीं हैं, वैसे बहुत कठिनाइया है। यदि जीवन उसी पुराने ढाचे मे चलता रहा तो बहुत कठिनाइया है और यदि जीवन बदल दिया गया तो कोई कठिनाई रहने वाली नहीं है। कठिनाइयो पर विजय पाना है तो जीवन को बदलना होगा। कोई यह सोचे कि जीवन पुरानी शान-शौकत और आडम्बर मे ही चलता रहे तो कठिनाइया घटने वाली नही हैं। आडम्बर हटा तो फिर जीवन मे कोई विशेष कठिनाई रहने वाली नही है।

अणुव्रतियो को यह भूल जाना चाहिये कि वे पहले क्या थे? ठीक उसी तरह जिस तरह मुनि बनने वाला व्यक्ति अपने पुराने जीवन को भूल जाता है। इस विचार को यदि याद रखा गया तो जीवन अधिकाधिक समुज्ज्वल

उसका आदर्श होगा। अणुव्रती बनने के बाद जीवन संयमोन्मुख होता है। अणुव्रती को अपने असंयमोन्मुख विगत जीवन का चिन्तन भी न करना चाहिये तथा उस समय की प्रवृत्तियों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। उसे अपना ऐश्वर्य प्रधान गत जीवन भूल जाना चाहिये। क्योंकि उसका विगत और वर्तमान का जीवन कोई मेल नहीं खा सकता। अणुव्रती बनने के बाद व्यक्ति को अपने क्रम में परिवर्तन करना होता है। वहां स्वतन्त्र वृत्ति का अवरोध होता है और नियमितता का प्रारम्भ। विस्तीर्ण आकांक्षाओं को सन्तोष के घट में समेटना होता है।

आज यह सर्वमान्य सिद्धान्त बन चुका है—'जीओ और जीने दो'। यह साधारण जनता का सिद्धान्त है। अणुव्रतियों का आदर्श तो इससे ऊंचा है। उनका दृष्टिकोण है—जीवन को बदलो सुधारो। व्यक्ति का जीना या मरना अपने आप में विशेष महत्त्व नहीं रखता है। व्यक्ति बहुत समय तक जीवित रहकर भी जीवन का उत्थान नहीं कर सकता और थोड़े समय बाद मर कर भी अपना कल्याण कर सकता है। अणुव्रती के सामने मरने व जीने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न है—ऊंचे उठने का व आदर्श बनने का। 'जीओ और जीने दो' का सिद्धान्त छोटा सिद्धान्त है। अणुव्रती को न जीवन के प्रति मोह रखना है और न अधिकाधिक जीवन की आकांक्षा ही। न उसे मृत्यु से भय है और न मन में किसी प्रकार का क्षोभ भी। उसे तो मोह और भय दोनों से ही ऊंचा उठना है, महान् बनना है।

प्रतिष्ठा की भूख भस्मक व्याधि

अणुव्रतियों की अपनी प्रतिष्ठा है ही किन्तु उन्हें प्रतिष्ठा की भूख नहीं रखनी चाहिये। यह भस्मक व्याधि की तरह का रोग है जिसमें कि कुछ भी खाया जाये भस्म हो जाता है। प्रतिष्ठा की भूख रोग बढ़ाती है और वह जीवन को विशुद्ध नहीं रहने देती। अणुव्रती को भूख एक ही होनी चाहिये—जीवन निर्माण करना, दृढ़तापूर्वक अपने जीवन को ऊंचा उठाना।

प्रत्येक अणुव्रती अपना उत्तरदायित्व समझे। उसे समझना चाहिये कि संघ का उत्तरदायित्व सभी सदस्यों पर समान है। एक अणुव्रती की भूल सबकी भूल है। जिस तरह एक साधु किसी साधु की बुराई को देखे और वह यदि

उसे सावधान न करे तो स्वय दोष का भागी बन जाता है, उसी तरह प्रत्येक अणुव्रती को भी यदि वह दूसरे अणुव्रती मे त्रुटि देखता है तो सहृदयता के साथ उसे सावधान कर देना चाहिये। अणुव्रती को तनिक-सी भूल को भी स्थान नही देना चाहिये। अणुव्रतियो का सर्वोपरि लक्ष्य है कि वे अपने आप पर नियन्त्रण रखें और नियमो का विधिवत् पालन करे।

प्रत्येक अणुव्रती पाच अणुव्रती और बनाये। मान लिया जाये कि कोई अणुव्रती नही बना पाया तो भी उसे अपने आप मे दृढ रहना चाहिये। वह अपनी मूल पूजी तो नही खोएगा। हमेशा मूल पर दृढ रहो। मुख्य लक्ष्य यही समझो और फिर प्रचार करो।

[२४ सितम्बर, १९५० को हासी (पजाब) मे अणुव्रती-सघ के अर्ध-वार्षिक अधिवेशन मे प्रदत्त मगल प्रवचन]

: १६ :

धर्म का मूल मंत्र

दर्शन-शास्त्र का निचोड़

बुद्धि का फल है—तत्त्व-चिन्तन और देह का सार है—व्रत-धारण यह भारतीय दर्शन-शास्त्र का निचोड़ है। एक कवि के शब्दों में—'बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणञ्च देहस्य सारं व्रतधारणञ्च'। संसार में अनन्त प्राणी हैं फिर भी इन दोनों का सुन्दर समन्वय जैसा मानव-जीवन में हुआ है वैसा और किसी जीवन में नहीं हुआ। मानव के तन में कार्य-क्षमता है और साथ-साथ बुद्धि-बल भी। भारतीय तत्त्वचिन्तकों के स्वर में यही वाणी गूंजी—सत्य को बूझो और उसे जीवन में उतारो। इसके फलस्वरूप ज्ञानवाद और क्रियावाद का प्रसार हुआ। भगवान् महावीर ने दो प्रकार की प्रज्ञा बतलाई—'ज्ञ प्रज्ञा और 'प्रत्याख्यान' प्रज्ञा। तात्पर्य यह कि सब कुछ जानो और दुःख के हेतुओं को छोड़ो। क्योंकि प्राणी मात्र सुख का अभिलाषी है दुःख कोई नहीं चाहता। सुख आत्मा का धर्म है। वह बाहर से नहीं आता। अन्दर में रहने वाला सुख बाहरी वस्तुओं के आवरण में ढका हुआ है दबा हुआ है। उसे पहचानने के लिए, प्रकाश में लाने के लिए हमारे सत्य शोधक तपस्वियों ने एक उपाय बताया जिसे हम धर्म कहने लगे और आज भी कहते आ रहे हैं।

धर्म का रूप

'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो'—धर्म उत्कृष्ट मंगल है। उसका स्वरूप है—अहिंसा संयम और तप। इस त्रिवेणी के पावन संगम में मनुष्य को अभिलाषित सुख का लाभ होता है। इस निष्ठा की आधारशिला पर असंख्य नर-नारियों ने रूखी-सूखी रोटियां खाकर, फटे-पुराने कपड़े पहनकर

भी वह आनन्द पाया, जो कि सम्राटों को भी नहीं मिल सका। सम्राट् उन अकिंचन तपस्वियों की चरण-धूलि के लिए तरसते और उनकी सुख-समाधि में ईर्ष्या करते। आत्म-ज्ञान के प्रकाश के सामने भौतिक विज्ञान का नक्षत्र तेजस्वी नहीं बना।

समय चक्र घूमता रहता है। उसमें आरोह-अवरोह, उतार-चढ़ाव अवश्य होता है। चक्का घूमा, भूतविज्ञान ऊपर आ गया। आत्मा और धर्म पर दृढ़ आस्था नहीं रही। बहुत सारे बुद्धिवादी धर्म को कलह, शोषण और अत्याचार का अखाड़ा सिद्ध करने पर उतारू हो गये। उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने भी वही राग अलापा। विश्व का दृष्टिकोण कुछ बदला-सा हो गया।

धर्म का आचरण न करना एक बात है, आचरण करना दूसरी और उसकी विडम्बना करना तीसरी। धर्म का दुरुपयोग करने में बड़े-बड़े अन्याय हुए और हो सकते हैं, पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि धर्म बुरा है। धर्म के नाम पर रची गई ठगाइयों का पोषक कोई नहीं हो सकता, किन्तु साथ-साथ धर्म जैसी दैवी सम्पदा के साथ खिलवाड़ करना भी कोई विज्ञ मनुष्य नहीं चाहता। धार्मिक विचारों के प्रति भगवान् महावीर का क्रान्ति-स्वर हमारे सामने है—

"विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसोवधम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो॥"

अविधि से ग्रहण किये हुए शस्त्र और कालकूट जहर जैसे घातक हैं, वैसे धर्म भी घातक बन जाता है, जब उसमें काम-वासना और लालसा का सन्निपात हो जाता है। धार्मिक इस चुनौती से अनजान नहीं थे।

आज का विज्ञान

अपने को 'बुद्धिजीवी' मानने वाले थोड़ा मुड़ कर देखें। आज विज्ञान की कैसी गतिविधि है। उसका उपयोग किस ओर हो रहा है। उसकी तेज गति नर-संहार की भूमिका के पास पहुंच चुकी है। पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि से विज्ञान को कोई बुरा नहीं कह सकता, किन्तु उसका दुरुपयोग निन्दनीय है।

अणुबम से अणुव्रत

सुख-शान्ति के लिए तथा अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए धर्म की आवश्यकता है। जीवन की सुविधाओं की दृष्टि से भौतिक विज्ञान भी अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता। दुरुपयोग दोनों का अच्छा नहीं। धर्म में बढ़े हुए विकारों को निहार कर उसको मिटा देने की बात जिन्होंने सोची है आज विज्ञान को मिटाने की बात भी सम्भवतः सोचते होंगे। क्योंकि वर्तमान में धर्म की अपेक्षा विज्ञान का उपयोग बहुत निम्न स्तर पर हो रहा है। उसकी विभीषिका और आतंक से समूचा संसार अपने को मौत के मुंह में पड़ा-सा अनुभव कर रहा है।

धार्मिकों के लिए यह सुन्दर अवसर है। वे शुद्ध भूमिका में पहुंच कर अहिंसा धर्म व विश्वमैत्री का नारा बुलन्द करें और हिंसक शक्तियों को चुनौती दें। धार्मिक किसी को मिटाना भी नहीं सोचता। उसका लक्ष्य हमेशा है—दुरुपयोग का अन्त करना। आज का विचारक हिंसक प्रवृत्तियों पर अहिंसा का अंकुश चाहता है। हमें विश्वास है कि अणुबम से समस्त विश्व अणुव्रत की प्रेरणा लेगा। भय से भय बढ़ता है, हिंसा से हिंसा बढ़ती है, क्रोध से क्रोध बढ़ता है। इनके प्रतिकार के लिए और कोई उपाय सोचना होगा।

सब व्यक्तियों का नैतिक धरातल समान रहे, यह न तो पहले कभी हुआ और न आज भी उसकी सम्भावना है। लोग चरित्र भ्रष्ट हो गये यह चिन्ता का विषय है। जनता का दृष्टिकोण गलत हो गया यह उससे भी अधिक चिन्ता का विषय है। यदि दृष्टिबिन्दु ठीक रहे तो चरित्र-सुधार में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती, पर उसके बिना सदाचार की आशा कैसी? 'शुभ शान्ति सुख' चाहो, यह तथ्यपूर्ण कथित है। अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह से ही संकट की रेखाएं मिट सकती हैं, इतना-सा समझ में आ जाये, फिर संकट कहां? ज्ञान सही होने पर चरित्र-विकास होने में समय नहीं लगता। सही मार्ग पर चलने वाला अपने आप लक्ष्य तक पहुंच जाता है।

मुझे यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि पश्चिम के वैज्ञानिकों ने भी करवट ली है। धर्म की ओर उनका अब झुकाव हुआ है। आज वे विज्ञान को भस्मासुर कहने की स्थिति तक पहुंच गये हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि को चरित्र

विकास के तत्त्वो की अधिक चाह है। भारत को पुन एक बार अपने पुराने गौरव को नवीन बनाने व अपनी पैतृक सम्पत्ति के उपयोग करने का स्वर्णिम अवसर मिला है।

त्याग और सयम

भारतवासियो के सामने सदा से त्याग और सयम का आदर्श रहा है और आज भी है। महाव्रता की सुन्दर व्यवस्था भारतीय विचारको की अद्वितीय सूझ है, पर वह सबके लिए सम्भव नही। जन-सामर्थ्य को ध्यान मे रखकर हमारे आचार्यो ने अणुव्रतो की भी व्यवस्था की, जो कि सवसाधारण के लिए सम्भव तथा अत्यन्त आवश्यक है।

सघ की स्थापना

इस आवश्यकता को ध्यान मे रखकर एक वर्ष पूर्व 'अणुव्रती-सघ' की स्थापना की गई। यह सर्वथा असाम्प्रदायिक है, जैसा कि विधान की पाचवी धारा मे स्पष्ट है—"अहिंसा मे विश्वास रखने वाले प्रत्येक धर्म, दल, जाति, वर्ण और देश के स्त्री-पुरुष सघ के सदस्य होने के अधिकारी होगे।" साम्प्रदायिक एव जातीय सघर्ष की समस्या आज की विषम समस्याओ मे से एक है। विश्व का बहुत बडा भू-भाग इस रोग से ग्रस्त है। हमे प्राणीमात्र की समानता पर विश्वास पैदा करना है। दूसरे देश और दूसरी जाति मे जन्म लेने के कारण मनुष्य मनुष्य का शत्रु नही बनता, यह सोचने के लिए मनुष्यो को समय निकालना होगा, दिल और दिमाग से सोचना होगा।

सघ का नेतृत्व

वर्तमान मे सघ के नेतृत्व का भार मुझ पर है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि सघ के सदस्यो को तेरापथ सम्प्रदाय की सदस्यता स्वीकार करनी होगी। किसी भी धर्म मे विश्वास रखने वाला इस सघ का सदस्य हो सकता है। अभी इसके नेतृत्व का उत्तरदायित्व मैंने इसलिए सम्भाला है कि इसकी प्रारम्भिक व्यवस्था सुदृढ हो जाये, सयम की चेतना मे नवक्रान्ति आ जाये। १८ वीं धारा के अनुसार उपयुक्त समय मे इसके नेतृत्व की अन्य व्यवस्था भी की जा सकती है।

एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा—अणुव्रती-संघ के नियम मुझे बहुत अच्छे लगे और मुझे इतनी जिज्ञासा और है कि संघ में सम्मिलित होने पर क्या मुझे आपको अपना धर्माचार्य मानना होगा ? क्या वन्दना करनी होगी ? मैंने उत्तर में कहा—यह कोई जरूरी नहीं और न मुझे इसकी भूख है। मैंने जन जीवन को ऊंचा उठाने के लिए यह कार्य किया है और मैं इसीमें सन्तुष्ट हूं। ११ वीं धारा में उल्लिखित प्रायश्चित्त आध्यात्मिक शुद्धिविधि से सम्बन्ध रखता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में बल के लिए कोई स्थान नहीं। हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही सब कुछ किया जाना सम्भव है।

अनुशासन के बिना कोई भी समाज सचेतन नहीं रह सकता—यह एक निर्विकार तथ्य है। इसलिए अणुव्रतियों को संघ के नियम और अनुशासन का पूर्ण सावधानी से पालन करना होगा। संघ के नियम आपने देखे हैं, जीवन में उतारे हैं। बहुत सारे एक वर्षीय साधना कर चुके हैं। अच्छा हो कि उन पर कुछ प्रकाश डाला जाये जिससे जनसाधारण भी उनकी उपयोगिता से परिचित हो सकें।

क्रूरता

क्रूरता सब अन्यायों का मूल है। कोई किसी की हत्या करता है या उसमें भाग लेता है, किसी मनुष्य को अछूत मानता है, किसी का तिरस्कार करता है—यह सब अपने अन्तस्तल में छिपी हुई क्रूरता के परिणाम हैं। यह सोचा जा सकता है कि किसी को अस्पृश्य मानकर उसका तिरस्कार न करना इससे क्या होगा ? और कुछ नहीं, उस छिपी हुई क्रूरता पर तीक्ष्ण प्रहार होगा, अहंभाव की कमी होगी और जातीय जीवन का एक बुरा अध्याय समाप्त होगा। मनुष्यों ने दूसरे मनुष्यों को नीच माना, आश्रितों पर मनमानी की, पशुओं के बारे में कुछ सोचने का समय ही कहां ? क्या वर्ग-संघर्ष यहीं से तो नहीं जन्मा है ? क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, यह प्राकृतिक नियम मनुष्य क्यों भूल जाता है। आत्म-हत्या कितना बड़ा पाप है फिर भी आध्यात्मिक चेतना के अभाव में यह एक बात छोटी-सी बन रही है। परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुआ, पारिवारिक व्यक्तियों से थोड़ी अनबन हुई, व्यापार में घाटा लगा, कोई छोटी-सी समस्या सामने आई, तुरन्त आत्म-हत्या के पथ

पर चल पडते है। आगे क्या होगा, इतना नही सोचते। भ्रूण-हत्या के काम भी कम नही होते। अणुव्रती होने का अर्थ है इन बुराइयो से बचना। अहिंसा-अणुव्रत मे मद्य न पीना, मांस न खाना, आग न लगाना, शिकार न करना, गाली न देना आदि आदि अनेक नियम हैं, जो कि छोटे होने हुए भी जीवन के अनिवार्य अंग हैं।

मूल आधार

विश्व की व्यवस्था का मूल आधार सत्य है। उसकी आज क्या स्थिति है, यह सब जानते हैं। मैं विशेष क्या कहूं। बात-बात मे झूठ है। खान-पीन की बात से लेकर जीवन मे सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात पर असत्य छाया हुआ है। न्यायाधीश पच वकील गवाह और गृहस्थ कही चले जाओ, असत्य की मात्रा मे सत्य की मात्रा विलीन हो जाती है। जिस पर यह बात बीतती है, वह दु ख का अनुभव करता है, पर दूसरों के अवसर पर वह उस बात को भूल जाता है। जिसकी चीज चुराई जाती है, उसे कष्ट होता है, पर दूसरो के अधिकार हडपने के समय वह अपनी स्थिति की याद नही करता। कितना अच्छा हो, प्रत्येक बुराई के अवसर पर मनुष्य अपनी दशा को उदाहरण बनाले।

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रत्येक स्थिति को सुदृढ और सुव्यवस्थित रखने के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। पूर्ण ब्रह्मचर्य कठोर साधना है, फिर भी अब्रह्मचर्य पर नियन्त्रण रखना नितान्त आवश्यक है। अप्राकृतिक मैथुन, वेश्यावृत्ति आदि दुष्प्रवृत्तियो के कुफल से कौन अपरिचित है ?

मानव मे विवेकता होती है, भली-बुरी का बोध होता है, पर सग्रह राक्षसी के सामने आते ही वह सब भुला देता है अन्याय मे प्रवृत्त हो जाता है। अधिक परिग्रह से सामाजिक जीवन बोझिल बना हुआ है। भान्ति भांति की कुरूढियो का पोषण करने के लिए धनार्जन करने की प्रबल भावना बनती है और उसके लिए कार्य और अकार्य सभी उपायो का अवलम्बन किया जाता है। 'कमी करो' यह धर्म का मूल मन्त्र है। भोग-सामग्री का बढाना श्रेयस् नही। इच्छा-नियन्त्रण की वेदी पर सब संघर्ष अपने आप स्वाह हो जाते हैं।

मैं चाहता हूं कि इस संघ में प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति सम्मिलित हों। सबके लिए इसका द्वार खुला रहे। यह भौतिक विज्ञान के दुरुपयोग व साम्प्रदायिकता वालों को चुनौती दे। इसके द्वारा जन-जन का जीवन-पथ प्रशस्त बने यह मेरी कामना है।

[१ अप्रैल १९५० को दिल्ली में अणुव्रती-संघ के प्रथम वार्षिक अधिवेशन में प्रदत्त सन्देश]

: १७ :

सच्ची सेवा

यह प्रभात मगल प्रभात है और यह वेला मगल वेला। आज मुझे अत्यन्त हर्ष है कि एक चिर प्रतीक्षित और अभिनन्दित भावना सफल व साकार हो रही है। जो योजना कुछ मास पूर्व केवल विचारो मे थी, वह आज क्रियान्वित हो रही है। सरदारशहर की इस मानवमेदिनी मे उस सघ का उद्घाटन हो रहा है, जो अपने रूप मे निराला है।

कल्याण का प्रशस्त मार्ग

भगवान् महावीर के उस वाक्य की आज मुझे स्मृति हो रही है, जिससे प्रेरणा मिली, आत्म-बल मिला और नई दिशा मिली—

'वर मे अप्पा दन्तो, सजमरण तवेरणय।
माह परेहि दम्मन्तो, बन्धरणेहि वहेहिय।'

'मैं स्वय सयम और तपश्चर्या के द्वारा अपने पर नियन्त्रण करू, यही मेरे लिए श्रेयस्कर है। दूसरे लोग मेरे पर नियन्त्रण करें, मुझे बाधें और मारें, यह श्रेयस्कर नही है।' यह कितना सुन्दर और हृदयग्राही उपदेश है। अपेक्षा है, जन-जन के द्वारा यह उपदेश क्रियान्वित किया जाये। आज के युग मे इसकी असीम उपयोगिता है और यही कल्याण का प्रशस्त मार्ग है।

नामकरण व उद्देश्य

इस सस्था का नाम 'अणुव्रती-सघ' है। नाम छोटा है, पर नाम से क्या? हमे नाम से मतलब नही, काम से मतलब है।

इस सघ की स्थापना का उद्देश्य है—जाति, वर्ण, देश और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मानव मात्र को सयम की ओर अग्रसर करना। आध्यात्मिकता के द्वारा गृहस्थ जीवन को ऊचा उठाना व विश्व-मैत्री तथा विश्व-शान्ति का

मार्ग प्रशस्त करना। संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है—सुषुप्त मानवता को जागृत करना। यद्यपि आज के युग में संघ और संस्थाओं की कमी नहीं है किन्तु आध्यात्मिक प्रेरणा करने वाली संस्थाएं नहीं के बराबर हैं। ऐसी परिस्थिति में मैं भाई बहिनों से कहना चाहूंगा—सजग होकर जीवन-निर्माण करो। सत्य और अहिंसा के बल पर जीवन-स्तर को ऊंचा उठाओ। अन्यान्य भौतिक साधनों से जीवन-स्तर ऊंचा उठाने में समूचा संसार व्यस्त है पर याद रखना होगा आत्म-निर्माण के बिना न तो शान्ति मिल सकती है और न सही अर्थ में जीवन का स्तर ऊंचा उठ सकता है।

संघ का महत्त्व

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से संघ का महत्त्व है यह तो निर्विवाद है। अन्यान्य दृष्टि-बिन्दुओं से भी यह कम उपयोगी नहीं होता। क्योंकि धर्म के साथ अभ्युदय का गहरा सम्बन्ध है। सत्य अहिंसा अपरिग्रह आदि धर्माचरण से जाति देश व राष्ट्र सबका हित होता है।

इस संघ की स्थापना में मुझे जनता से प्रबल प्रेरणा मिली है। आज से नहीं वर्षों से जन-वर्ग ऐसी योजना के लिए उत्सुक था। हजारों व्यक्तियों की आहभरी जीवन-कहानियां समय-समय पर मेरे सामने आती रहीं। फिर भी मैं एक विशेष काम में संलग्न होने से इस ओर ध्यान न दे सका। मेरा वह कार्य था—साधु-संस्था के शिक्षण का विस्तार। साधु-समाज में चरित्र-विकास पूर्ण था। उसके लिए कोई प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं थी। शिक्षण के लिए भी पूर्वाचार्य श्री कालूगणी का बलवान् प्रोत्साहन काम कर रहा था। फिर भी उस कार्य में बहुत कुछ विकास की अपेक्षा थी। मैंने भी अपनी सारी शक्ति उसी कार्य में लगा दी। मुझे प्रसन्नता है कि साधु-समाज इन वर्षों में इस दिशा में विशेष प्रयत्नशील हुआ और शीघ्र ही अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचा। जब मैंने दूसरी ओर देखा तो जनता की स्वर-लहरियां कानों से टकरा रही थीं। मैंने अब उनकी ओर ध्यान देना उपयुक्त समझा और दिया। यह अणुव्रती-संघ की योजना उसीका परिणाम है। मुझे आशा है कि यह जनता की उस मांग को पूरी करेगा। मुख्य रूप से आज का युग भी आध्यात्मिकता की मांग कर रहा है वह भी इससे पूरी होगी। निःसन्देह यह सबके लिए उपयोगी होगा।

असाम्प्रदायिक

सम्प्रदाय के नाम से आज लोग घबडा जाते है, पर इस संघ मे साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नही है। इसमे सार्वजनिक नियमो का विधान किया गया है। नैतिक उत्थान सबको प्रिय है। अहिंसा और सत्य पर किसी का अधिकार नही है। वे सबके लिए हैं। उन्ही के आधार पर इसका संयोजन या सकलन किया गया है। जनता इसका स्वागत करेगी, ऐसा मुझे विश्वास है।

युवको से

युवक अब अपनी शक्ति का परिचय दे। युवक क्रान्ति के सचालक होते हैं। मुझे इस कार्य मे अधिक प्रेरणा युवको की ओर से मिली है। बूढो मे भला कहा इतना जोश कि वे कठिनाई की बात करें? मेरे शब्दो मे वृद्ध और युवक अवस्था से सम्बन्धित नहीं, परन्तु क्रिया से सम्बन्धित है। यह युवको के लिए अग्नि-परीक्षा का अवसर है। युवक शक्ति की कसौटी है। युवक इसमे खरे उतरें, नही तो उनकी उत्थान की बातें, उन्नति की कल्पनाए, सामूहिक कल्याण और जागृति की कामनाएँ थोथी और तथ्यहीन होगी। मै ऐसी बात देखना नही चाहता। मै उन्हे कह सकता हू कि वे स्वय त्याग के पथ पर आयें और दूसरो को प्रेरणा दें। उनके लिए यह स्वर्णिम अवसर है। आवाज मे सबसे पहले और काम मे सबसे पीछे, यह समय अब नही रहा। अब उनके सामने दो मार्ग है, या तो सही अर्थ मे सुधार-भावना को सफल करने के लिए आत्म-निर्माण मे जुट जायें या सुधार की थोथी आवाजो को बन्द कर दें। युवक सेवा चाहते है, उत्थान चाहते है—उन्हे अब समझ लेना चाहिए कि त्याग ही सच्ची सेवा, सच्चा उत्थान और सच्ची जागृति है।

दुनिया सुख की टोह मे है। भोग मे सुख नही, विषाद है। सुख की भ्रान्ति है। सच्चा सुख त्याग मे है। जहा भोग छूटने पर भोगी दुःख पाता है, वहा त्यागी आनन्द का अनुभव करता है। त्यागी स्वय भोगो को ठुकराता है। भोगी उनके लिए मारा-मारा फिरता है। जिन्हे त्याग का अभ्यास नहीं, उन्हें नश्वर भोग-लीलाओ के आवर्तन-प्रत्यावर्तन मे बडी यातनायें झेलनी पडती हैं। आज बडे-बडे विलासी व सत्ताधिकारियो की दशा सबके सामने है। आचार्य श्री कालुगणी कहा करते थे कि 'देख जगत्-रचना, भय रखना

अपना। इसलिए बेलो और त्याग के पथ पर आओ। त्याग महामन्त्र है। इसका जप करने वाला किसी भी दशा में कष्टों से आन्दोलित नहीं होता। मैं चाहता हूं कि युवक त्याग के प्रति मुड़ें नैतिक पथ पर आगे बढ़ें आत्म-बल का विकास करें और आध्यात्मिक शान्ति को स्थायी बनायें।

लोभ रावण और शान्ति सीता

त्याग का मार्ग कठिनाई का मार्ग है। इससे घबराने की आवश्यकता नहीं। कठिनाई को पार करो। साहस से काम लो। नीतिकारों ने कहा है कि भय से भय बढ़ता है। भय की छाती को चीर कर चले जाओ फिर कोई भय नहीं। ठीक इसी प्रकार कठिनाइयों से घबराओगे तो वे बढ़ेंगी। उनका सामना करो वे मिट जायेंगी। यदि राम समुद्र से घबरा जाते अपनी थोड़ी सी सेना देखकर निराश हो जाते तो उन्हें सीता कहां से मिलती? वे घबराये नहीं। साहस से काम लिया। अपने तुच्छ और नगण्य साधनों के उपरान्त भी रावण को समस्त दुराचारों के साथ यमी का पुत्र बना दिया। एक कवि ने कहा है—

> विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि।
> विपक्ष पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपय॥
> तथाप्येको राम सकलमवधीद्राक्षसकुलं।
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥

महान् व्यक्तियों की क्रिया-सिद्धि उनके सत्त्व साहस व व्यक्तित्व में रहती है। वह बाहरी उपकरणों में नहीं मिलती। भाइयो! आज आपकी प्यारी सती शान्ति सुदूर टापू लंका में अपहृत हो चुकी है। बीच में भौतिकता का विशालकाय समुद्र पड़ा है। दुनिया के सबसे बड़े शत्रु लोभ रावण को मार कर आपको अपनी शान्ति सीता को लाना है। डरो मत घबराओ नहीं हिम्मत रखो साहस बटोरो। युवक जहां गोलियों की बौछार में सीना तानकर खड़े हो जाते हैं वहां इसमें घबराहट की क्या बात है?

साधना-काल

अणुव्रती-संघ में कुछ छूट भी दी है। एक वर्ष का साधना-काल रखा गया है। इससे लाभ होगा। लोग अपने आपको तोल सकेंगे और हमें भी परीक्षण का मौका मिल जायेगा। इस योजना में मैं चाहता था उनमें कोई नियम नहीं

अणुव्रतों की दार्शनिक पृष्ठभूमि

व्यक्ति बनाम समाज

व्यक्ति का अस्तित्व अपना है। समाज का अस्तित्व व्यक्ति है। व्यक्ति वस्तुवाद है और समाज सुविधावाद। व्यक्ति की आवश्यकता अपने आप पूरी नहीं हुई तब सापेक्ष स्थिति का उद्गम हुआ। सापेक्षता ने समाज को जन्म दिया। समाज का आधार है— परस्परोपग्रह। 'एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के प्रति उपकार' का सिद्धान्त जितना वास्तविक है उतना ही व्यावहारिक है। जैन-दर्शन ने विश्व स्थिति की मौलिक समस्या—जड़ चेतन के सम्बन्ध की समस्या को सुलझाने के लिए इसका उपयोग किया। इस दशा में वैदिक दर्शन ने व्यवहार के क्षेत्र में इसका प्रयोग किया। जैन-दर्शन के अनुसार जैसे विश्व संगठन का हेतु जीव और पुद्गल का परस्पर उपग्रह है वैसे ही वैदिक दर्शन के अनुसार समाज संगठन का हेतु पारस्परिक सहयोग है। समाज की सहयोगी व्यवस्था और सापेक्ष स्थिति में बनकर व्यक्ति व्यक्ति नहीं रहता वह आदान प्रदान का केन्द्रबिन्दु बन जाता है।

व्यक्ति व्यक्ति रहता है तब तक उसके सामने महत्त्वाकांक्षा महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए परिग्रह या संग्रह संग्रह के लिए शोषण या अपहरण शोषण के लिए बौद्धिक या कायिक शक्ति का विकास बौद्धिक और दैहिक शक्ति-संग्रह के लिए विद्या की दुरभिसन्धि स्पर्धा आदि-आदि समस्याएं नहीं होतीं। समाज में प्रवेश पाकर व्यक्ति ज्यों-ज्यों अपनी दुर्बलता का प्रतिकार पाता है त्यों-त्यों महत्त्वाकांक्षा और स्पर्धा उसे शक्ति-संग्रह के लिए

---

१ तत्त्वार्थाधिगम ५।२१

२ समन्वय सहकार्य

प्रासंगिक फल के रूप में समाज का नियमन भी होता है, किन्तु वह धर्म का अनन्तर फल नहीं। ऐहिक और पारलौकिक आत्म-सिद्धि के लिए धर्म करना विहित नहीं है। धर्म परलोक के लिए है यह धारणा भी सदोष है। आत्म-हित की दृष्टि से वह इहलोक और परलोक दोनों में श्रेयस्कर[1] है।

भारतीय चिन्तन की मुख्य धारा चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्ष की ओर रही। धर्मशास्त्र अध्यात्मशास्त्र का चरम उद्देश्य मोक्ष रहा इसमें कोई आश्चर्य नहीं किन्तु कामशास्त्र में भी जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष बतलाया गया है[2]। उपनिषद् में प्रेयस् को बन्धन और श्रेयस् को मुक्ति माना है। प्रेयस् जीवन की अनिवार्यता है फिर भी उसमें अनासक्ति होनी चाहिए कारण यह कि श्रेयस् की ओर जो गति है उसमें प्रेयस बाधक न बने। जैन-दृष्टि के अनुसार आत्म-मुक्ति की प्रक्रिया के दो तत्त्व हैं—संवर और निर्जरा। संवर निवृत्ति है और निर्जरा निवृत्ति समन्वित प्रवृत्ति संवर निरोध है और निर्जरा शोधन। यह व्यक्ति की सहज मर्यादा है। इससे यह फलित होता है कि धर्म व्यक्ति के आत्म-नियमन का साधन है इसे समाज के आपसी सम्बन्धों के नियमन का साधन बताया जाता है वह अनात्मवादी मानस की कल्पना है।

महाव्रत और अणुव्रत

भारतीय जीवन में व्रती जीवन का सर्वोच्च गौरव पूर्ण स्थान है। यहां धन ऐश्वर्य भोग विलास और दान से कोई बड़ा नहीं बना। नमि राजर्षि राज्य-वैभव और भोग-विलास को ठुकरा कर निर्ग्रन्थ बने। इन्द्र ने उनसे कहा—'आप दान दें भोग करें और फिर दीक्षा लें। राजर्षि बोले—'जो व्यक्ति प्रतिमास दस लाख गायों का दान करता है उसके लिए भी संयम

---

१ नो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा।
—दसवै ९।४

२ तेहिं आराहिया दुवे लोए। —दस ८।२

३ वैशेषिक दर्शन १ ४ न्यायदर्शन १।१

४ हेमशब्दानुशासन १।१।२ लघुन्यास

५. स्थविरे धर्म मोक्षञ्च—कामशास्त्र अध्याय २

श्रेष्ठ है, यद्यपि सयमी रहने पर वह एक गाय का भी दान नहीं करता[1]।'

भारतीय परम्परा मे महान वह है जो त्यागी है। यहा का साहित्य त्याग के आदर्शों का साहित्य है। जीवन के चरम भाग मे विरक्त या सन्यासी बन जाना तो सहज वृत्ति है ही किन्तु जीवन के प्रारम्भिक भाग मे भी प्रव्रज्या आदेय मानी जाती रही है[2]। त्यागपूर्ण जीवन महाव्रत की भूमिका या निरपवाद वृत्ति है, यह निरपवाद सयम मार्ग है। उसके लिए अत्यन्त विरक्ति की अपेक्षा है। जो व्यक्ति अत्यन्त विरक्त और अत्यन्त अविरक्त के बीच की स्थिति मे होता है, वह अणुव्रती बनता है। आनन्द गाथापति भगवान् महावीर से प्रार्थना करता है—'भगवन्! आपके पास बहुत सारे व्यक्ति निर्ग्रन्थ बनते है, किन्तु मुझ मे ऐसी शक्ति नही कि मै निर्ग्रन्थ बनू, इसलिए मै आपके पास पाच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत-द्वादश व्रतात्मक गृहीधर्म स्वीकार करूगा[3]। यहा शक्ति का अर्थ है—विरक्ति। जिसे ससार के प्रति, पदार्थों के प्रति, भोग-उपभोग के प्रति विरक्ति का प्राबल्य होता है, वह निर्ग्रन्थ बन जाता है। अहिसा और अपरिग्रह का महान् व्रत उसका जीवन धर्म बन जाता है। यह वस्तु सबके लिए सम्भव नही। व्रत का अणुरूप मध्यम मार्ग है। अव्रती जीवन, शोषण और हिसा का प्रतीक होता है और महाव्रती जीवन दुःशक्य। इस दशा मे अणुव्रती जीवन का विकल्प ही शेष रहता है।

अणुव्रत का विधान व्रतों का सीमाकरण या सयम और असयम, सत्य और असत्य, अहिसा और हिसा, अपरिग्रह और परिग्रह का मिश्रण नही, किन्तु जीवन की न्यूनतम मर्यादा का स्वीकरण है।

अणुव्रत विभाग

अणुव्रत पाच है—अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य या स्वदार-सन्तोष और

---

१ जो सहस्स सहस्साण, मासे मासे गव दए।
तस्सावि सजमो सेओ, अदिन्तस्स वि किचण। उत्त० ९।४०

२ यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।

३ नो खलु अह तहा सचाएमि मुण्डे जाव पव्वइत्तए। अहण्णं देवाण-प्पियाण अन्तिए पचाणुव्वइय सत्तसिक्खावइय दुवालसविह गिहिधम्म पडिवज्जिस्सामि—उपासक दशांग अ० १

अपरिग्रह या इच्छा परिमाण।

अहिंसा—अहिंसा रागद्वेषात्मक प्रवृत्तियों का निरोध या आत्मा की राग द्वेषरहित प्रवृत्ति। पहला निषेधात्मक पक्ष है और दूसरा विधेयात्मक। निषेधात्मक भावी शुद्धि के लिए है और भूत शुद्धि के लिए विधेयात्मक। वर्तमान शुद्धि दोनों से है।

अनिवार्य हिंसा या अर्थ हिंसा जीवन की आवश्यकता का पक्ष है। अनर्थ हिंसा प्रमादवश होती है। मनुष्य जितनी कायिक हिंसा नहीं करता उतनी मानसिक करता है। स्व-पर, बड़ा-छोटा, अस्पृश्य-स्पृश्य, शत्रु-मित्र आदि अनेक कल्पना के बन्धनों में फंस कर मनुष्य इतना उलझता है कि वह मानसिक हिंसा से सहज मुक्ति नहीं पाने पाता। अहिंसा अणुव्रत का तात्पर्य है अनर्थ हिंसा से या आवश्यकता शून्य केवल प्रमाद या अज्ञान जनित हिंसा से बचना।

सत्य—सत्य अहिंसा का वचनात्मक या भाव प्रकाशनात्मक पहलू है। हास्य कुतूहलवश अयथार्थ बोलना भी असत्य है। यह उसका सूक्ष्म रूप है। मनुष्य इससे न बच सके तो कम से कम स्थूल असत्य से तो अवश्य बचना चाहिए। जिस वाणी या भावाभिव्यञ्जना के पीछे बुरे विचारों का वास छिपा रहता है, वह स्थूल असत्य है। सत्य अणुव्रत में ऐसे असत्य का त्याग आवश्यक होता है।

अचौर्य—अचौर्य अहिंसात्मक अधिकारों की व्याख्या है। पर-वस्तु-हरण चौर्य है, हिंसा का प्रकार है। मनुष्य समाज के आपसी सम्बन्ध अधिकांशतया स्तेय वृत्ति के उपजीवी हैं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है, अधिकार ले लेता है, दास बनाता है, आदेश मनवाता है, स्वत्व छीनता है, यह सब स्तेय वृत्ति है। सूक्ष्म दृष्टि से दूसरे का एक तिनका भी उसकी अनुमति के बिना लेना स्तेय है। अचौर्य अणुव्रत की मर्यादा है—जीवन के आवश्यक मूल्यों का अपहरण न करना।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य अहिंसा का स्वात्मरमणात्मक पक्ष है। पूर्ण ब्रह्मचारी न बन सकने की स्थिति में विवाहित पत्नी के अतिरिक्त अब्रह्मचर्य का परित्याग करना और अपनी पत्नी के साथ भोग की सीमा करना चतुर्थ अणुव्रत है।

अपरिग्रह—अपरिग्रह अहिंसा का पर-पदार्थ निरपेक्ष रूप है। गृहस्थ का जीवन अपरिग्रही बन नहीं सकता इसलिए अपरिग्रह अणुव्रत का अर्थ है—

इच्छा का परिमाण। परिग्रह का नियत्रण सामाजिक नियम से हो सकता है किन्तु उससे इच्छा का नियन्त्रण नही होता। व्रत यह है, इच्छा के नियत्रण के द्वारा परिग्रह का नियत्रण हो।

अणुव्रत के अनुकूल वातावरण

व्रतो की उपादेयता मे कोई दो मत नही। मत द्वैध है, व्रतो की उपयोगिता मे। आत्मविरक्ति से स्वनियमन करने वाले विरले होते है। अधिकाश व्यक्ति तब तक हिसा और परिग्रह को नही छोडते, जब तक वे वैसा करने के लिए बाध्य नही किये जाते। व्रत हृदय-परिवर्तन का फल है। जनसाधारण का हृदय उपदेशात्मक पद्धति से परिवर्तित नही होता, इसलिए समाज की दुव्यवस्था को बदलने के लिए व्रतो की कोई उपयोगिता नही। लगभग स्थिति ऐसी है। क्यो है, यह चिन्तनीय है। इस चिन्तन के परिणामस्वरूप दो तीन बातें हमारे सामने आती है। पहली यह कि व्रतो की रचना समाज की आर्थिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए नही। उनकी रचना हुई है, उसकी आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए। आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटते ही आर्थिक दुर्व्यवस्था मिटती है, किन्तु व्रताचरण का वह गौण फल है। आत्मिक दुर्व्यवस्था परिसमाप्ति का एक मात्र साधन हृदय-परिवर्तन है। व्यक्ति का हृदय बदलता है, उससे आत्मिक दुर्व्यवस्था का अन्त हाता है। उससे समाज की दुर्व्यवस्था मिटती है।

कानून के पीछे ऐसी स्थिति है कि मनुष्य उसका उल्लघन नही कर सकता और यदि करता है तो उसे उसका फल भुगतना पडता है। व्रतो के पीछे ऐसा वातावरण नही है। उनका आचरण इच्छा प्रेरित है।

दूसरी बात मनुष्य की आन्तरिक वृत्तिया राग-द्वेषात्मक होती है। इनके फलस्वरूप व्यक्ति मे अप्रिय वस्तुस्थिति के प्रति असहिष्णु वृत्ति, अपने को सर्वोच्च मानने की वृत्ति, दूसरो को ठगने की वृत्ति और सग्रह की वृत्ति, ये चार मुख्य वत्तिया[1] होती है। समाज का वातावरण और आसपास की स्थितिया इनके अनुकूल होती है तब इन्हे उत्तेजना मिलती है और इनका कार्य तीव्र हो चलता है। बाहरी साधन की प्रतिकूल दशा मे ये वृत्तिया दबी रहती

---

१ कोह च माण च तहेव माय, लोभ चउत्य अजत्थ दोसा।
—सूत्रकृताग २-६-२६

है। समाज की अपेक्षा इतनी ही है कि वे बंधी रहें। अध्यात्म की यह भूमिका है। उसकी अपेक्षा है इनका मूलोच्छेद हो। जिनकी आत्मा उद्बुद्ध हो जाती है वे पारिपार्श्विक स्थितियों पर विजय पाकर उनका मूलोच्छेद कर डालते हैं। किन्तु सर्वसाधारण की स्थिति वैसी नहीं होती। समाज की भोगवादी मनोवृत्ति उन्हें छकाती है यही कारण है कि सर्वसाधारण को व्रत पालन की सहज प्रेरणा नहीं मिलती। तीसरी बात व्रत लेने वाले व्रतों के कलेवर की सुरक्षा करते हैं किन्तु उनकी आत्मा को नहीं छूते। व्रतों को अपने जीवन में लाते हैं किन्तु जीवन को उनके आदर्शों पर नहीं ढालते। इस पर पुनर्विचार करना होगा कि अणुव्रती जीवन का आदर्श क्या और कैसा होना चाहिए?

अणुव्रती जीवन का आदर्श

अणुव्रती जीवन का आदर्श है—परिग्रह और आरम्भ का अल्पीकरण। भोगवाद से महारम्भ और महापरिग्रह का जन्म होता है। अणुव्रती को महेच्छ और महारम्भी नहीं होना चाहिए। महारम्भ का हेतु महान् इच्छा है। इच्छा स्वल्प होती है तब हिंसा अपने आप स्वल्प हो जाती है। आरम्भ आवश्यकता के सहारे चलता है तब वह असीम नहीं बनता। उसकी गति इच्छा के अधीन हो जाती है तब वह सीमातीत बनता है। पूंजी और उद्योग का केन्द्रीकरण आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं किन्तु इच्छा की पूर्ति के लिए होता है। अणुव्रती आदर्श के अनुसार इनका अपने आप विकेन्द्रीकरण हो जाता है। अणुव्रती दूसरे के श्रम और श्रमफल को न छीने तभी वह अहिंसा और अशोषण के आदर्श पर चल सकता है। दूसरे के श्रम को छीनने की वृत्ति छूटती है तब अपने आप उसका जीवन आत्मनिर्भर स्वावलम्बी और श्रमपूर्ण बन जाता है। जो व्यक्ति अपने श्रम पर निर्भर रहता है वह कभी महारम्भी और महापरिग्रही नहीं बनता। महारम्भ व महापरिग्रह की परिभाषा समझने में भूल हो रही है। उस पर फिर विचार करने की आवश्यकता है। सामान्यतया जो कुछ प्रत्यक्ष हिंसा के कार्य को लोग महारम्भ मान लेते हैं। परोक्ष हिंसा की ओर ध्यान नहीं देते। खेती में जीव मरते हैं इसलिए वह महारम्भ का धन्धा लगता है किन्तु जोंके तोल-माप में प्रत्यक्ष हिंसा नहीं दीखती इसलिए वह

महारम्भ नही लगता। महारम्भ और महापरिग्रह नरक के कारण है[1]। कारण साफ है, उनसे आर्त्त व रौद्र ध्यान बढता है। उससे आत्म-गुण का घात होता है। आत्मा का अध पतन होता है। आचार्य जिनसेन ने व्याज लेकर आजीविका करने को आर्त्तध्यान का चिन्ह[2] माना है। विषय-सरक्षण रौद्र ध्यान है। इसका अर्थ है, विषय और धन की प्राप्ति और सरक्षण के लिए चिन्ता[3] करना। धार्मिक समाज मे भी मानसिक हिंसा का प्राबल्य इसलिए हो गया कि उसमे प्रत्यक्ष हिंसा नही दीखती। यदि प्रत्यक्ष हिंसा की भान्ति परोक्ष हिंसा से भी घृणा होती तो जीवन इतना असत्यनिष्ठ और अप्रामाणिक नही बनता।

वृत्तियो की अप्रामाणिकता का हेतु महापरिग्रह है। महापरिग्रह के लिए महासावद्य उपाय प्रयोजनीय होते है। अणुव्रती अल्पपरिग्रही होता है, इसलिए उसके जीवन-उपाय अल्प सावद्य होते है।[4] इसीलिए उसे अल्प सावद्य कर्मार्य कहा जाता है। अल्पसावद्य कर्मार्य के सामने अप्रामाणिक बनने की स्थिति ही नही आती। अणुव्रती की जीवन-वृत्ति सग्रहोन्मुख नही होती। वह कला या कर्म का आलम्बन इसलिए लेता है कि जीवन-वृत्ति सुखपूवक चले। श्रम के द्वारा जीविका का सुखपूवक निर्वाह नही होता है, तब चोरी आदि कुप्रवृत्तिया[5] बढती है। जटिल परिस्थितिया मनुष्य को बुरा बनने की प्रेरणा देती है, इसलिए समाज उन्हें सरल बनाने की सोचता है। अन्य स्थितियो की अपेक्षा इच्छा की अनियन्त्रित दशा अधिक जटिल स्थिति है। अणुव्रती को उस पर अधिक ध्यान देने की अपेक्षा होती है।

---

१ महारभयाए महापरिग्गहियाए, पचिंदिय वहेण कुणिहामरेण।
—भगवती श० ८-३-६

२ मूर्च्छा कौशील्य कैनाश्य कौसीद्यान्यतिगृध्नुता।
भयोद्वेगानुशोकाच्च लिङ्गान्यार्त्ते स्मृतानि वै॥ ४०॥
—महापुराण पर्व—२१

३ भवेत् सरक्षणानन्द स्मृतिरर्थार्जनादिषु।—महापुराण २१।५१

४ अल्पसावद्यकर्मार्या श्रावका श्राविकाश्च, विरत्यविरतिपरिणतत्वात्।
—तत्त्वार्थराज वार्तिक ३।३६

५ कलाद्युपायेन प्राप्तसुखवृत्तिकस्य चौर्यादिव्यसनासक्तिरपि न स्यात्।
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृ० २। वक्षस्कार ३

संक्षेप में अणुव्रती जीवन का आदर्श है—इच्छा-परिमाण आरम्भ परिमाण। इस आदर्श को निभाने के लिए अणुव्रती को बड़प्पन व झूठे आदर्शों पर प्रहार करना होगा। श्रम को नीच मानने की भावना, वृत्ति के आधार पर ऊंच-नीच की कल्पना, धन के आधार पर बड़े-छोटे की कल्पना को छोड़ना होगा। जीवन के मापदण्डों को बदलना होगा। जीवन के मूल्य न बदलें, सादगी धारा में प्रस्तुत न आये तब तक अणुव्रत जीवन प्रेरक नहीं बनते। अणुव्रती को सादगी के लिए आडम्बरों का और नम्रता के लिए मिथ्याभिमान का बलिदान करना होगा।

व्यक्तिवादी मनोवृत्ति

भारतीय जीवन में व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का प्राबल्य है। अध्यात्मवादी धारा में व्यक्ति का विशेषत्व बढ़ता है। संयम के क्षेत्र में यह आवश्यक है। 'समाज संयमी नहीं बनता तब मैं क्यों बनूं' यह मन स्थिति संयम के स्वीकरण में बाधक बनती है। समाज संयमी न बने फिर भी व्यक्ति को संयमी बनना चाहिए। संयम समाज का कानून नहीं, व्यक्ति की स्व-मर्यादा है।

सामाजिक रीतिक्रम समाज नहीं करता वहां अकेला व्यक्ति अपना विशेषत्व दिखाता है, यह स्थिति समाज के लिए घातक बनती है। व्यक्ति की उच्च क्षमता समाज की मनोवृत्ति को उभारने का निमित्त बनती है।

अध्यात्म की भाषा यह नहीं है कि व्यक्ति असंयम में व्यक्तिवादी रहे। उसकी अपेक्षा है व्यक्ति संयम-साधना के लिए व्यक्तिवादी रहे। यह व्यक्तिवाद जो संयम से निखरता है समाज या राष्ट्र के लिए घातक नहीं बनता।

धर्म समाज को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण देता है, यह कहने वाले उसकी सीमा को दृष्टि से ओझल किये देते हैं। सही अर्थ में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण बनने का प्रधान कारण सामन्तशाही है। भोगवादी मनोवृत्ति, संग्रहवादी मनोवृत्ति, व्यक्तिवादी मनोवृत्ति और परिवारवादी मनोवृत्ति में सामन्तशाही के निश्चित परिणाम हैं। भारत धर्म का मुख्य उद्गम स्रोत रहा है, इस दृष्टि से भले ही यह धर्मप्रधान कहलाये पर धर्माचरण की दृष्टि से धर्मप्रधान कहलाने की क्षमता कम से कम आज तो उसमें नहीं है। सौभाग्य से सन्तों की दृष्टि अब भी सुरक्षित है। यदि उनका जीवन में प्रयोग बढ़ा, व्यक्तिवादी मनोवृत्ति मोम

असयम और अहम्-पोषण से हटकर सयम की ओर मुडो तो अवश्य ही अनैतिकता की वाढ रुकेगी।

सगठित शक्ति

अणुव्रती स्वयसिद्ध शक्ति है। भोगवाद की एकछत्र शक्ति के प्रतिरोध के लिए वही सफल साधन है। अपेक्षा यह है, वह शक्ति सगठित बने। असयुक्त दशा मे दो नौ के अको को जो 'अठारह' का बल मिलता है, वह सयुक्त दशा मे 'निनान्वे' का हो जाता है। सयुक्त स्थिति का लाभ उठाने के लिए ही अणुव्रत आन्दोलन का आरम्भ कर व्रत-शक्ति को सगठित करने का प्रयत्न किया गया है।

आज की भाषा मे प्रगति व विकास का मापदण्ड पदार्थ-विस्तार है। जडवादी युग के पदार्थ-परक विकास के सामने चैतन्य विकास का जो प्रतिरोध अपेक्षित था। उस दिशा मे यह सफल कदम प्रमाणित हुआ। भविष्य मे इससे बहुत सम्भावनाए हैं।

ह्रास या विकास

मनुष्य की बाहरी स्थितिया विकसित हुई है, यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह है कि उसकी आन्तरिक वृत्तिया मन्द हुई है। तदुल वयालिय मे अवसर्पिणी युग के मनुष्य की अन्तरवृत्ति और व्यवहार के अवसर्पण का चित्र खीचते हुए लिखा है—"मनुष्य की क्रोध, मान, माया और लोभ की वृत्तिया क्रमश बढेगी। तोल-माप के अप्रामाणिक उपकरण बढेगे, तुला का वैषम्य, मान का वैषम्य, राजकुल का वैषम्य, वर्षा का वैषम्य इस प्रकार वैषम्य बढेगा, धान्य बलहीन हो जायेगा, उसमे मनुष्यो की आयु कम होगी।"

ज्यो-ज्यो आन्तरिक वृत्तियो का विकार बढता है, त्यो-त्यो स्थितिया जटिल बनती हैं। रोग का मूल अन्तर का क्षय है, मनुष्य बाहरी विकार से चुंधिया गया है, वह अभी इस प्रश्नवाचक चिन्ह का उत्तर नही पा सका है कि वर्तमान युग विकास का युग है या ह्रास का ?

उद्देश्य

अणुव्रत-आन्दोलन का उद्देश्य है—जीवन के मूल्यो को बदलना। यह कार्य सरल नही है। एक प्रकाश की रेखा अवश्य है। युद्ध और शीत युद्ध के थपेडो

और अस्त्र-शस्त्रों की स्पर्धा से मनुष्य बर्बर बन चुका। अब उसके सामने आन्तरिक वृत्तियों को पवित्र बनाने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं रहा। अब सोच रहा है कि आन्तरिक शक्तियां [जगी] तो ही अभी तो प्रलय दूर नहीं है। इस आन्दोलन की ये अपेक्षाएं हैं—मनुष्य शस्त्रनिष्ठ न बनकर अहिंसानिष्ठ बने। भौतिक विकास को मुख्य न मानकर आध्यात्मिक चेतना को जगाये। भोगी न बनकर व्रती बने। जीने के स्तर (Standard of living) को गौण मानकर जीवन-स्तर (Standard of life) को ऊंचा उठाए। एक शब्द में आन्तरिक साम्य को शक्तिशाली बनाकर वैषम्य का अन्त करे।

प्रगति की ओर

अणुव्रत-आन्दोलन क्रमशः प्रगति की ओर बढ़ रहा है। पांच वर्ष के प्रारम्भिक समय में २२ [?] अणुव्रती बने। संख्या की दृष्टि से यह कोई ज्यादा प्रगति नहीं है। किन्तु भोगवाद के विरुद्ध संयम की ध्वनि का बल बढ़ रहा है, जनता का दृष्टिकोण बदल रहा है, नैतिक क्रान्ति की भूमिका बन रही है, यही सफलता का शुभ चिन्ह है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस आन्दोलन ने वातावरण को प्रभावित किया है।

समन्वय की दिशा

अणुव्रत-आन्दोलन जाति, वर्ण, वंश के भेदों को गौण मानता है, यही नहीं धर्म भेद के प्रति भी इसका दृष्टि-बिन्दु समन्वयी और सहिष्णु है। किसी भी धर्म को मानने वाला इसका सदस्य बन सकता है। इतना ही नहीं, इसकी रचना के आधारभूत तत्त्व भी सर्वमान्य हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये सर्वधर्मसम्मान्य तत्त्व हैं। इन्हें कोई अस्वीकार नहीं करता। सांख्य योग में इन्हें 'यम' कहा जाता है। पातंजलि ने यम को उसी

१ अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।३०।
जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौममहाव्रतम् ।३१।

उक्त अहिंसा आदि का अनुष्ठान जब सार्वभौम अर्थात् सब के साथ, सब जगह और सब समय समान भाव से किया जाता है तब ये महाव्रत हो जाते हैं। जैसे किसी ने नियम लिया कि मछली के सिवाय अन्य जीवों की हिंसा नहीं करूंगा तो यह जाति अवच्छिन्न अहिंसा है। इसी तरह कोई नियम ले

अर्थ मे रखा है, जिस अर्थ मे जैन सूत्र अणुव्रत का प्रयोग करते है। महाव्रत शब्द दोनो की भाषा मे एक है। पातंजलि ने जाति, देश, काल समयानवच्छिन्न नियमो को महाव्रत कहा है। जैन भाषा मे आगाररहित पूर्ण त्याग महाव्रत कहलाते हैं। दोनो का तात्पर्य सर्वथा एक ही है। महात्मा बुद्ध की वाणी मे ये पाच शील हैं। श्रमण अणु और स्थूल दोनो प्रकार के पापों को वर्जता है। गृहस्थ स्थूल पापो[1] को वर्जता है। तब उसका व्रत अपने आप अणुव्रत हो जाता है। इस्लाम और ईसाई धर्म मे अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह की मर्यादा और शिक्षा है। तात्पर्य एक ही है कि प्रत्येक धर्म मुमुक्षु के लिए जैसे सन्यास का विधान करता है, वैसे ही गृहस्थ के लिए अणुव्रत धर्म का।

अणुव्रत-आन्दोलन मे अणुव्रत शब्द जैन सूत्रों से लिया गया है, किन्तु भावना मे कुछ अन्तर है। जैन परम्परा की भावना के अनुसार अणुव्रती वह बन सकता है जो सम्यग दृष्टि हो। इसीलिए अणुव्रतों को सम्यक्त्वमूलक कहा[2] गया है। इस आन्दोलन मे यह भावना नही है। जैन दृष्टि को स्वीकार करने वाला ही अणुव्रती बने, ऐसा नही है। इसके सम्यक दर्शन की परिभाषा है—'अहिंसानिष्ठ दृष्टि'। अणुव्रती वह बन सकता है, जिस की अहिंसा मे निष्ठा हो। यह आन्दोलन सब धर्मों को अहिंसा मे केन्द्रित करता है। वास्त-

---

कि मैं तीर्थों मे हिंसा नही करूंगा तो यह देश अवच्छिन्न अहिंसा है। कोई यह नियम करे कि मैं एकादशी, पूर्णिमा और अमावस्या को हिंसा नही करूंगा तो यह कालावच्छिन्न अहिंसा है। कोई नियम करे कि मैं विवाह के अवसर के सिवाय अन्य किसी निमित्त से हिंसा नही करूंगा तो यह समयावच्छिन्न (निमित्त से सम्बन्धित) अहिंसा है। इसी प्रकार सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भी भेद समझ लेने चाहिए। ऐसे यम व्रत तो है, परन्तु सार्वभौम न होने के कारण महाव्रत नही है। उपर्युक्त प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाकर जब सभी प्राणियो के साथ सब देशो मे सदा सर्वदा इनका पालन किया जाये और किसी भी निमित्त से इनमे शिथिलता आने का अवकाश न दिया जाये, तब ये सार्वभौम होने पर 'महाव्रत' कहलाते है।

—पातंजल योग दर्शन, साधना पद २

१ धम्मपद १८।१०

२ उपासक दशांग अ०१

विक धर्म अहिंसा ही है। सत्य आदि शेष व्रत उसीके पोषक या सहायक हैं। अहिंसा-निष्ठ व्यक्ति आत्म-शुद्धि के लिए ही व्रतों को स्वीकार करेगा भौतिक अभिसिद्धि के लिए नहीं। व्रतों का अपना स्वतन्त्र मूल्य है। भौतिक सिद्धि के लिए उनका प्रयोग करना उनकी उच्चता की अवमानना है। अर्थ व्यवस्था असंयम से सुधर सकती है तब भला कौन उसके सुधार के लिए व्रत का कठोर मार्ग अपनायेगा। अर्थ के लिए व्रत को अपनाने वाला अर्थनिष्ठ हो सकता है व्रतनिष्ठ या अहिंसानिष्ठ नहीं। इसलिए व्रती बनने का उद्देश्य मात्र आत्मशुद्धि होना चाहिए। अन्तर की शुद्धि बाहरी वातावरण को शुद्ध बनायेगी। उससे आर्थिक और भौतिक व्यवस्था अपने आप शुद्ध होगी इसमें कोई सन्देह नहीं। अणुव्रत आन्दोलन केवल जीवन-शुद्धि की सामान्य भूमिका का समन्वय ही नहीं करता धार्मिक मतभेदों के प्रति सहिष्णुता भी बनाता है। यह अहिंसावादियों का सार्वजनिक मंच है। इसके सहारे अहिंसा का उच्च घोष किया जा सकता है। सब धर्मों का विचार-भेद मिटे यह दुरूह है किन्तु उनका विरोध मिटे यह अपेक्षित है और सम्भव है। अणुव्रत-आन्दोलन इसका माध्यम है। दूसरे धर्म और व्यवहार की खाई को पाट कर उनका समन्वय करना भी इसका उद्देश्य है। तीसरी दृष्टि यह है कि धर्म जो शुद्धि विचार और भाषा का धर्म बन रहा है, वह जीवन का धर्म बने।

व्यावहारिक लाभ

वर्तमान की मुख्य समस्या आर्थिक है ऐसा माना जाता है। अर्थशास्त्री इसका समाधान प्रचुर उत्पादन बताते हैं। बाहरी रूप में कुछ हल हुआ-सा लगता भी है किन्तु महालोभ है तब तक यह समस्या सुलझ जायेगी ऐसा नहीं लगता। इसका निरपवाद समाधान संयम है। व्रती जीवन जहां आत्म-शान्ति पैदा करता है वहां आर्थिक समस्या का भी समाधान देता है। व्रती जीवन वर्तमान युग की सर्वोच्च आवश्यकता है। इसके अनुरूप वातावरण बनाना सबका कर्तव्य है। व्रतों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी तब मुख्य रूप में शुद्धि बढ़ेगी और व्यवहार में श्रम और स्वावलम्बन की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

'विरोधी त्रस नहीं मारू गा'—यह इच्छा का नियमन है अतः शुद्धि है।

१—समाधेय—सत्यमहाव्रत योगशास्त्र-प्रकरण २

१६ :

व्रतों के प्रयोग

मनुष्य का जीवन सरस भी है, नीरस भी है, सुख भी है, दुःख भी है, सब कुछ भी है, कुछ भी नहीं है।

जीवन कला है।

नीरस को सरस, दुःख को सुख, कुछ भी नहीं को सब कुछ बनाने वाला कलाकार है।

मनुष्य कलाकार है। कला गूढ़ की अभिव्यक्ति है। गूढ़ को अभिव्यक्त करने वाला कलाकार है। वह गूढ़ से भी गूढ़ है। अतिगूढ़ को समझने के लिए पूर्ण तैयारी अपेक्षित चाहिए। अतिस्पष्ट से अभिलषित विकास नहीं होता। इन दोनों से परे का जो मार्ग है वह 'कला' है। वह जीवन की कला है। असंयम के घोर अन्धकार में संयम की पथ रेखाएं भी पथ निश्चित बना देती है।

घोर हिंसा और सूक्ष्म अहिंसा के बीच का जो मार्ग है वही बहुतों के लिए साध्य है।

अपरिमित संग्रह और अपरिग्रह के बीच का जो मार्ग है — वही बहुतों के लिए साध्य है।

युद्ध और आकर्षण की दुनिया में जीने वाले अहिंसा और अपरिग्रह की लौ को न जला सकें — ऐसी बात नहीं है।

अहिंसक होना प्रबल धीर का वीर्य है।

हिंसक बने रहना पहले दर्जे की कमजोरी है।

भय से भय बढ़ता है, घृणा से घृणा।

क्रूरता का प्रतिफल क्रूरता और विरोध का प्रतिफल विरोध है।

हिंसा के प्रति हिंसा का सिद्धान्त फलित हो रहा है।

भयाकुल मनुष्य उन्मुक्त आकाश मे सो नही सकता।
कपाटो से बन्द आश्रय मे सोकर भी सुख से नीद नही ले सकता।
शान्ति का प्रकाश अभय के सान्निध्य मे फैलता है।

मन और आत्मा को बेचकर शरीर की परिचर्या करने वाले लोग सुख के सामने शान्ति को आखो से ओझल किये देते हैं। सुख शारीरिक स्रोतो से उत्पन्न होने वाली अनुभूति है। शान्ति का प्रतिष्ठान मन और आत्मा है।

साधारण लोग शान्ति के लिए सुख को नही ठुकरा सकते, किन्तु अशान्ति पैदा करने वाले सुख से बच तो सकते है।

अशान्ति दुख का कारण है, फिर भी सुख के लिए अशान्ति को मोल लेने मे मनुष्य नही सकुचाता।

परिणाम दुख ही होता है।

शान्ति के बिना सुख के साधन भी सुख पैदा नही करते। शान्ति का मूल्य सुख से बहुत अधिक है। यह सही समझ है। इसमे बाहरी विकास की उपेक्षा भी नही है। आन्तरिक विकास के अभाव मे पनपने वाली बाहरी विकास की भयकरता या निरकुशता भी नही है। सुख के साधन पदार्थ, उनका सग्रह और उनका भोग है। शान्ति का साधन सयम या त्याग है।

सग्रह और अशान्ति का उद्गम-बिन्दु एक है। सामान्य स्थिति मे वह अभिव्यक्त नही होता। सग्रह के बिन्दु इधर रेखा बनाते चलते है तो उधर अशान्ति भी सब रेखा पर बढती जाती है।

सग्रह की भूख सबको है, अशान्ति को कोई नही चाहता।
मन को दावानल मे डाले और वह जले भी नही, यह कैसे होगा ?
कार्य-कारण का सही विवेक किये बिना भटकना नही मिटेगा।

दो-सौ वर्ष पूर्व आचार्य भिक्षु ने कहा—परिग्रह से धर्म नही होता, तब यह बहुत अटपटा लगा।

युद्ध परिग्रह के लिए होते है, अणुबम भी उसीके लिए बनते हैं।
अधिकारो के उपार्जन मे क्रूरता बरतनी पडती है।
उनकी सुरक्षा के लिए और भी अधिक।
अधिकार-दान या धन-दान क्रूरता का आवरण है।

शोषण का पोषण करने वाले दानियों की अपेक्षा अदानी बहुत श्रेष्ठ है।

शोषण न करने वाला स्वयं धन्य है चाहे वह एक कौड़ी भी न दे।

शोषण का द्वार खुला रख कर दान करने वाला हजारों को लूट कुछेक को देने वाला कभी धन्य नहीं हो सकता।

अशान्ति की जड़ परिग्रह-विस्तार या अधिकार-विस्तार की भावना है। दुःख की जड़ अशान्ति है। इसीलिए तो सुख-सम्पन्न के हजारों वैज्ञानिक उपकरणों के सुलभ होने पर भी सुख दुर्लभ होता जा रहा है अभय और शान्ति खिसकती जा रही है।

मैं अधिक गहराई में नहीं जाऊंगा। थोड़ी गहराई में गये बिना गति भी नहीं होगी। पेट को पकड़ बिना बाहरी उपचार से कुछ बनने का नहीं है।

सुख के बाहरी उपादानों को बढ़ाने की दिशा में अणु-युग का प्रवर्तन हुआ है। इसमें भयंकरता के दर्शन होने लगे हैं। अणु बुरा नहीं है वह भयंकर भी नहीं है। भयंकरता मनुष्य में है। भय से भय आता है, अभय से अभय। अपने मन से भय निकाल दीजिये अणु की भयंकरता नष्ट हो जायेगी। मन में भय बढ़ता रहा तो अणु और अधिक भयंकर बन जायेगा। अणुवाले अणु वाले से नहीं घबराते। जिनके पास अणु नहीं है—वे अणु वालों से घबराते हैं। यह मन और स्थूल की टक्कर है। समता के जमाने में विषमता सफल नहीं हो सकती। इसीलिए भय बढ़ रहा है। अणु की टक्कर अणु से होने दीजिये। भय रहेगा ही नहीं।

स्थूल अस्त्रों से अणु-अस्त्रों का प्रतिकार नहीं हो सकता।

अणु-अस्त्र अणु-अस्त्रों के प्रतिकार में लगेंगे तो दोनों मिट जायेंगे। प्रतिकार के ये दोनों मार्ग गलत हैं।

अणुव्रत संग्रह का मर्यादा-करण है। अधिकार और इच्छाएं सिमट कर अपने क्षेत्र में आ जाती हैं अभय का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अणुबमों को हतवीर्य करने का यही सरल मार्ग है।

"अणुव्रतों के द्वारा अणुबमों की भयंकरता का विनाश हो।"

अभय के द्वारा भय का विनाश हो।

"त्याग के द्वारा सग्रह का ह्रास हो।"

ये घोष उच्चतम सभ्यता, सस्कृति और कला के प्रतीक बनें और इस कार्य मे सबका सहयोग जुडे तो जीवन की दिशा बदल सकती है।

अपनी शान्ति के लिए अणुव्रत अपनाइये।
अपनी शान्ति के लिए अभय बनिये।
अपनी शान्ति के लिए सग्रह को कम करिये।
आपके अणुव्रतो की आभा दूसरो को भी आलोक देगी।
आपका अभय-भाव शत्रु को भी मित्र बनायेगा।
आपके सग्रह का अल्पीकरण अणु-आयुधो को अपनी मौत मरने की स्थिति पैदा करेगा।

विश्व के विशिष्ट चिन्तको, लेखको, कलाकारो मे, जो अपने अपने राष्ट्र की सजीव भावनाओ के प्रतीक बन यहा आये है, मै हृदय की गहरी सवेदना के साथ कहना चाहूगा कि वे जीवन मे 'व्रतो के प्रयोग' की दिशा को व्यापक बनाने मे लगें। हमारे सयम से हमारा हित होगा, दूसरो को प्रेरणा मिलेगी। थोडा-बहुत दृष्टिकोण बदला तो व्यापक हित होगा।

अहिसा, शान्ति और मैत्री के लिए यत्नशील व्यक्ति और सगठनो के सारे निरवद्य प्रयत्न शृ खलित हो—यह मै चाहता हू।

राजनैतिक दलबन्दी से दूर रह कर विशुद्ध मानवता व भाईचारे की दृष्टि से कुछ अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाए जायें। जैसे—

(१) अहिसा-दिवस—नि शस्त्रीकरण का प्रयोग किया जाये।

(२) क्षमा-दिवस—अपनी भूलो के लिए क्षमा मागी जाये और दूसरो को उनकी भूलो के लिए क्षमा दी जाये।

ये प्रेरणा के स्रोत बन सकते है और बिखरे प्रयत्नो को सामूहिक रूप दे सकते हैं।

मैं, मेरी भावना और सहयोगियो की सद्भावना के लिए कृतार्थ और कृतज्ञ हू। अहिसा के प्रयत्नो की सफलता चाहता हू।

[२ दिसम्बर, १९५६ को दिल्ली मे अणुव्रत सेमिनार मे प्रदत्त मगल प्रवचन]

। २० ।

नैतिक निर्माण का आन्दोलन

अणुव्रतों के प्रति लोगों में निष्ठा बढ़ रही है। आन्दोलन के प्रति भाव उमड़-उमड़ कर आ रहे हैं यह शुभ सूचना है। आज का जन-जीवन यह महसूस करने लगा है कि भौतिक सिद्धियां ही सब कुछ नहीं हैं। इससे परे भी कुछ अभिलाष है जिसे हमें पाना है। हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों में कितने नेता सम्मिलित होते हैं। हमें यह भी नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों की क्या-क्या प्रशंसाएं होती हैं। परन्तु हमें सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमों से लोगों को क्या मिलता है। हमें यह सोचना है कि हम नैतिक उत्थान में कितने सहायक बन सकते हैं।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अणुव्रत-आन्दोलन जैसे आन्दोलनों से भी लोग दूर रहते हैं। इसमें अपना हित जानते हुए भी वे नजदीक नहीं आते यह क्यों? अणुव्रती बनने में संकोच क्यों? लोग सम्भवतः इसे साम्प्रदायिक समझते हों किन्तु आन्दोलन के ७ वर्षों के सार्वजनिक कार्यक्रमों से यह भावना भी ढह चुकी है। अभी कल जब राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद से बातें हुईं तो आन्दोलन के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि आन्दोलन के प्रति शुरू से मेरी निष्ठा रही है। जब कि लोग इसे जानते भी नहीं थे तब से मैं इसका प्रशंसक रहा हूं। इसका लगाव किसी सम्प्रदाय विशेष से न रहने के कारण ही यह व्यापक बन रहा है यह खुशी की बात है।

आज राष्ट्र के नेता इसे असाम्प्रदायिक मानने लगे हैं और इसे उचित प्रश्रय भी मिल रहा है। आज का जन-जीवन विकाराक्रान्त है, यह मैं जानता हूं। लोगों की दुर्बलताएं भी मेरे से छिपी नहीं हैं। लोग कषायों से मुक्त नहीं हैं।

वर्तमान स्थिति पर कवि का यह कथन पूरा उतरता है कि—

"दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्यमहोरगेण ।
ग्रस्तोभिमानाजगरेण माया-
जालेन बद्धोऽस्मि कथ भजे त्वाम् ।।"

"क्रोध की अग्नि से मानव का हृदय जल रहा है, लोभ की ज्वालाए सारे विवेक को भस्मसात् कर रही है। मानरूपी अजगर सारे जीवन को निगल रहा है और माया के पेचीदे जाल मे फसा मानव छटपटा रहा है।"

ऐसी अवस्था मे व्रतो का पालन सम्भव नही होता, ऐसा लोग सोचते है। यह नही भूल जाना चाहिए कि व्रत ही जीवन के प्राण है, उनके बिना जीवन सुखमय नही बन सकता और जीने की कला नही आ सकती, अणुव्रत-आन्दोलन जीवन की कला सिखाता है। कषायो से मुक्त करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है।

व्रतो से व्यक्ति श्रमनिष्ठ बनता है। श्रम से जीवन हलका महसूस होता है। हमारा श्रम मे पूर्ण विश्वास है। अभी-अभी मै अपने इन शिष्यो व साथियो के साथ दो-सौ मील की पैदल यात्रा करते हुए यहा आया हू। मेरे कन्धे खाली थे, किन्तु इन साधुओ के कन्धे भाराक्रात थे, फिर भी वे आनन्द का अनुभव करते थे। विहार के श्रम से वे थकते नही थे। वे श्रम को अपनी साधना का एक प्रमुख अग समझते है। इस कष्टमय साधना मे उन्हे अपने लक्ष्य के दर्शन होते है। श्रम इनके जीवन का अविभाज्य अग है। श्रम ही जीवन है, यह हमारा घोष है। परन्तु श्रम सात्विक होना चाहिए, तामसिक नही।

आज व्रतो के प्रति लोगो मे निष्ठा बढ रही है, यह ठीक है। किन्तु जब तक इनका सक्रिय प्रयोग जीवन मे नही होगा, तब तक बुराई मिटेगी नही। केवल व्रतो की गुणगाथा गा लेने मात्र से कुछ भी बनने का नही है।

यह आन्दोलन विश्व मे चल रहे अन्य आन्दोलनो से सर्वथा भिन्न है। यह नैतिक जीवन के प्रति केवल निष्ठा ही पैदा नही करता, अपितु जीवन को नैतिक बनाने की दिशा मे सक्रिय कदम उठाता है। यह जीवन को भाराक्रात

। २० ।

नैतिक निर्माण का आन्दोलन

अणुव्रतों के प्रति लोगों में निष्ठा बढ़ रही है। आन्दोलन के प्रति भाव उमड़-उमड़ कर आ रहे हैं यह शुभ सूचना है। आज का जन-जीवन यह महसूस करने लगा है कि भौतिक सिद्धियां ही सब कुछ नहीं हैं। इनसे परे भी कुछ अभिलाष है जिसे हमें पाना है। हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों में कितने नेता इकट्ठे होते हैं। हमें यह भी नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों की क्या-क्या प्रशंसाएं होती हैं। परन्तु हमें सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमों से लोगों को क्या मिलता है। हमें यह सोचना है कि हम नैतिक उत्थान में कितने सहायक बन सकते हैं।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि अणुव्रत-आन्दोलन जैसे आन्दोलनों से भी लोग दूर रहते हैं। इसमें अपना हित जानते हुए भी वे नजदीक नहीं आते यह क्यों? आत्मकल्याणी बनने में संकोच क्यों? लोग सम्भवतः इसे साम्प्रदायिक समझते हों किन्तु आन्दोलन के ७ वर्षों के सार्वजनिक कार्यक्रमों से यह भावना भी बह चुकी है। अभी कल जब राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद से बातें हुई तो आन्दोलन के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि आन्दोलन के प्रति शुरू से मेरी निष्ठा रही है। जब कि लोग इसे जानते भी नहीं थे तब से मैं इसका समर्थक रहा हूं। इसका लगाव किसी सम्प्रदाय विशेष से न रहने के कारण ही यह व्यापक बन रहा है यह खुशी की बात है।

आज राष्ट्र के नेता इसे असाम्प्रदायिक समझने लगे हैं और इसे उचित समर्थन भी मिल रहा है। आज का जन-जीवन विषाक्त है, यह मैं जानता हूं। लोगों की दुर्बलताएं भी मेरे से छिपी नहीं हैं। लोग कषायों से मुक्त नहीं हैं।

वर्तमान स्थिति पर कवि का यह कथन पूरा उतरता है कि—

"दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,
दुष्टेन लोभाख्यमहोरगेण।
ग्रस्तोभिमानाजगरेण माया-
जालेन बद्धोऽस्मि कथ भजे त्वाम् ॥"

"क्रोध की अग्नि से मानव का हृदय जल रहा है, लोभ की ज्वालाए सारे विवेक को भस्मसात् कर रही है। मानरूपी अजगर सारे जीवन को निगल रहा है और माया के पेचीदे जाल मे फसा मानव छटपटा रहा है।"

ऐसी अवस्था मे व्रतो का पालन सम्भव नही होता, ऐसा लोग सोचते है। यह नही भूल जाना चाहिए कि व्रत ही जीवन के प्राण है, उनके बिना जीवन सुखमय नही बन सकता और जीने की कला नही आ सकती, अणुव्रत-आन्दोलन जीवन की कला सिखाता है। कषायो से मुक्त करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है।

व्रतो से व्यक्ति श्रमनिष्ठ बनता है। श्रम से जीवन हलका महसूस होता है। हमारा श्रम मे पूर्ण विश्वास है। अभी-अभी मै अपने इन शिष्यो व साथियो के साथ दो-सौ मील की पैदल यात्रा करते हुए यहा आया हू। मेरे कन्धे खाली थे, किन्तु इन साधुओ के कन्धे भाराक्रात थे, फिर भी वे आनन्द का अनुभव करते थे। विहार के श्रम से वे थकते नही थे। वे श्रम को अपनी साधना का एक प्रमुख अग समझते है। इस कष्टमय साधना मे उन्हे अपने लक्ष्य के दर्शन होते है। श्रम इनके जीवन का अविभाज्य अग है। श्रम ही जीवन है, यह हमारा घोष है। परन्तु श्रम सात्विक होना चाहिए, तामसिक नही।

आज व्रतो के प्रति लोगो मे निष्ठा बढ रही है, यह ठीक है। किन्तु जब तक इनका सक्रिय प्रयोग जीवन मे नही होगा, तब तक बुराई मिटेगी नही। केवल व्रतो की गुणगाथा गा लेने मात्र से कुछ भी बनने का नही है।

यह आन्दोलन विश्व मे चल रहे अन्य आन्दोलनो से सर्वथा भिन्न है। यह नैतिक जीवन के प्रति केवल निष्ठा ही पैदा नही करता, अपितु जीवन को नैतिक बनाने की दिशा मे सक्रिय कदम उठाता है। यह जीवन को भाराक्रात

नहीं बनाता भारमुक्त करता है। एक बार इसमें प्रवेश कर लेने पर व्यक्ति उससे छूटने का विचार नहीं करता। व्रत व्यक्ति में चिपक जाते हैं। ज्यों-ज्यों श्रद्धा बढ़ती है त्यों-त्यों जीवन व्रतमय बनता जाता है। भूदान में व्यक्ति कुछ भूमि का दान कर अपनी जिम्मेवारी से छूट सकता है किन्तु इस आन्दोलन से वह छूट नहीं सकता। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है त्यों-त्यों जीवन में जिम्मेवारियां बढ़ती जाती हैं।

मैं मानता हूं कि व्यक्ति एकाएक व्रती नहीं बन सकता किन्तु अपनी भावना व्रताभिमुख रखता है तो किसी अवसर पर व्यक्ति व्रती बन सकता है। मैं सदा आशावादी रहा हूं। आज आन्दोलन के प्रति सद्भावनाएं बढ़ रही हैं तो वह दिन भी दूर नहीं जबकि समस्त वर्गों में नीति की प्रतिष्ठा होगी।

व्रती बनने में संकोच नहीं होना चाहिए। जनसाधारण के बीच व्रतों को ग्रहण करना लोग आडम्बर समझते हैं यह उनकी भूल है। जनसमूह के बीच लिये गये संकल्पों से आत्मबल बढ़ता है जिम्मेवारी आती है—ऐसा मेरा अनुभव है।

अणुव्रत-गोष्ठी आपको नाना प्रकार के विचार दे रही है। विचारों की ध्वनि आचार को उत्पन्न करती है। अणुव्रतों पर आप विचार करें। उसकी भावना को अपने मित्रों तक पहुंचाएं और जीवन को तदनुकूल बनाने का प्रयास करें।

[१ दिसम्बर, १९५१ को दिल्ली में अणुव्रत सेमिनार में दूसरे दिन प्रदत्त प्रवचन]

: २१ :

सुख और शान्ति का मूल : संयम

प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नही होती । यदि स्वय मे प्रकाश नही है तो वह दूसरो को भी प्रकाशित नही कर सकता । यही "व्यक्तिवादी सिद्धान्त" का आधार है । इसका फलित यह है— यदि व्यक्ति शुद्ध है तो समाज भी शुद्ध होगा, यदि व्यक्ति अपवित्र है तो समाज भी अपवित्र होगा ।

"मनस्येक वचस्येक कमण्येक महात्मनाम्" यह सच है । किन्तु सभी मनुष्य करके ही कहे, यह मुश्किल है। जो करता है, उसे ही कहने का अधिकार है, यह एकान्तवाद ठीक नही । अच्छा उपदेश सबको मान्य होना चाहिए । हम वीतराग नही फिर भी उपदेश करते है। सुधर्मा स्वामी भगवान् की वाणी के आधार पर बोलते थे । उसी प्रकार हम वीतराग न होते हुए भी वीतराग की वाणी के आधार पर बोलते है, यह अनुचित नही कहा जा सकता ।

आज आडम्बर का युग है । प्रत्येक कार्य मे आडम्बर दीखता है । व्रतो के पालन मे भी आडम्बर दीखता है । इसी आशय को स्पष्ट करते हुए एक कवि ने कितना सुन्दर कहा है —

वैराग्यरग परवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय ।
वादाय विद्याध्ययन च मेऽभूत् कियद् ब्रुवे हास्यकर स्वमीश ।।

लोग विरक्त बनते है दूसरो को ठगने के लिए, धार्मिक उपदेश जन-रजन का साधन बना हुआ है, ज्ञानार्जन वादविवाद के लिए किया जाता है, इससे अधिक हास्यास्पद स्थिति और क्या हो सकती है?

जब तक जीवन-व्यवहार मे दम्भ रहेगा, हिंसक वृत्तिया रहेंगी, तब तक

शान्ति का समावेश जीवन में हो सके' यह कम सम्भव लगता है। शान्ति अहिंसा और संयम पर आधारित है। शास्त्रों में कहा है—

हत्थ संजए पाय संजए, वाय संजए, संजइंदिए।
अज्झप्परए सुसमाहिअप्पा सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खु॥

हाथ पैरों का संयम वाणी का संयम इन्द्रियों का संयम करने वाला व्यक्ति और जो अध्यात्म में लीन रहता है वही साधु है, महान् है। ऐसे व्यक्ति को ही शान्ति प्राप्त होती है।

संयम और अहिंसा के आदर्श वैयक्तिक जीवन को तो मानते ही हैं उससे आगे बढ़कर वे सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी शान्ति का स्रोत बहा देते हैं। मेरा विश्वास है कि विश्व-शान्ति का इस प्रकार प्रादुर्भाव होगा व इसी प्रकार वह स्थिर होगी।

अणुबम व हाइड्रोजनबम द्वारा शान्ति चाहने वाले भयंकर अजगर के मुंह में हाथ डालकर अमृत प्राप्त करना चाहते हैं। यदि संसार शान्ति और सुख चाहता है तो उसे अणुव्रतों के मार्ग पर आना होगा अन्यथा वह भटकता ही रहेगा।

[४ दिसम्बर, १९५६ को दिल्ली में अणुव्रत सेमिनार में प्रदत्त दीक्षान्त प्रवचन]

: २२ :

व्रत का जीवन में महत्व

जब कभी भी संसार मे शान्ति हुई या होगी तो उसमे अहिंसा का हाथ रहा है और रहेगा। अहिंसा का जीवन मे आचरण ही व्रत है। व्रत से जीवन मे संकल्प आता है। वह क्षणिक नही होता, स्थायी होता है। जीवनभर उसका पालन करना आवश्यक होता है। यदि किसी ने शराब नही पीने का व्रत ले लिया है तो उसे निभाना उसका कर्तव्य हो जाता है। इस तरह व्रत मन का पहरेदार है। मनुष्य का मन यदि डोल भी जाये तो पहरेदार के रूप मे व्रत उसे उसी समय सचेत कर सकता है। व्रत का जीवन मे इसीलिए बडा महत्त्व होता है।

साधारणतया मनुष्य का जीवन बुराईमय नही होता। संसर्ग, परिस्थिति या कर्मोदय से उसमे बुराइयां घर कर जाती है। जिस प्रकार बाडा एक सुरक्षित स्थान होता है, उसमे कोई दूसरा घुस नही सकता, पर उसमे भी जब दरारें हो जाती हैं तो कोई भी अन्दर प्रवेश कर सकता है। आदमी की अपेक्षा पशु इस विद्या मे अधिक प्रवीण होते है और पशुओ मे भी गधा अधिकतर बाडो को चीर कर अन्दर घुस जाता है। उसी प्रकार संसर्ग या परिस्थितिवश मनुष्य मे दुर्गुण घर कर लेते हैं। यदि बाडे को सुरक्षित करना है तो उसके लिए इतना ही नही है कि गधो को अन्दर से निकाल दिया जाये, पर इसके लिए यह भी आवश्यक है कि फिर से उनके प्रविष्ट न हो सकने के लिए उन दरारो को भी पाटा जाये। यही काम व्रत का है। जो अवगुण आत्मा मे घर कर गये है, उन्हें निकाल कर पुन न आने देना ही व्रत का अर्थ है।

व्रत का भार क्यों ?

कुछ लोग कह सकते हैं कि वे कोई बुरा काम करते ही नहीं जिससे कि उन्हें व्रत की आवश्यकता हो। उन्होंने कभी जीवन में धूम्रपान किया ही नहीं और न अब भी करने का विचार है तब फिर व्रत का यह भार क्या ? पर जब कोई बीड़ी पीता ही नहीं है तब फिर उसे व्रत लेने में संकोच क्यों होता है ? क्या इस प्रकार व्रत न लेने की भावना के पीछे व्यक्ति का अपने प्रति ही अविश्वास नहीं बोल रहा है ? व्यक्ति अपने भविष्य के बारे में इतना सन्देहशील क्यों हो जाता है कि वह दृढ़तापूर्वक यह नहीं कह सकता कि मैं कभी धूम्रपान नहीं करूंगा। दृढ़ निश्चय और व्रत यह तो एक ही बात है। व्रत के पीछे एक मनोवैज्ञानिक तत्त्व भी छिपा है। उससे मनुष्य गिरता-गिरता भी सहसा बच जाता है।

जीवन एक दरवाजा है। मान लिया जाये उस द्वार से कोई व्यक्ति अभी नहीं आ रहा है पर कोई यह तो नहीं कह सकता कि उधर से कोई आये ही नहीं। राह चलता कोई भी व्यक्ति उस दरवाजे से आ सकता है। कोई उसे निषेध नहीं कर सकता। यदि कोई चाहता है कि मेरे दरवाजे में कोई भी नहीं घुसे तो या तो उसे अपना दरवाजा बन्द करना पड़ेगा या वहां फिर कोई दरबान बैठाना पड़ेगा जो अन्दर आते हुए व्यक्तियों को रोक सके। यही स्थान जीवन में व्रत का है। अनेक बुरे लोग और अनेक बुराइयां संसार में हैं। उन्हें मिटाना किसी के वश की बात नहीं है। यदि व्यक्ति यह चाहे कि कोई बुराई मेरे में प्रवेश न करे तो उसका एक ही मार्ग है अपने जीवन में व्रत ग्रहण किये जायें।

टूटने का भय

कुछ व्यक्ति कहा करते हैं हम त्याग तो करलें लेकिन भविष्य का क्या पता ? कभी वह टूट जाये तो ? यह तो ऐसी बात हुई कि कोई भोजन करने से पहले ही यह कहे कि मैं तो भोजन इसलिए नहीं करता कि कहीं अजीर्ण हो जाये तो ? क्या इस प्रकार अजीर्ण के डर से भोजन छोड़ा जा सकता है ? यह ठीक है कि अपनी पाचन-शक्ति से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए, पर भोजन नहीं करने से जीवन कितने दिन चलेगा ? इसी प्रकार व्रत लेने से पहले ही टूटने की आशंका करना व्यर्थ है। अपने सामर्थ्य के अनुसार व्रत

: २३ :

अणुव्रत : प्रतिस्रोत का मार्ग

अणुव्रत का मार्ग प्रतिस्रोत का मार्ग है अर्थात् दुनिया से प्रतिकूल चलने का मार्ग है। दुनिया जहां अनुस्रोत में बहती है वहां अणुव्रती को प्रतिस्रोत में चलना होता है। भगवान् महावीर की वाणी है —

अणुसोय पट्ठिए बहुजणम्मि पडिसोयलद्धलक्खेणं।
पडिसोयमेव अप्पा दायव्वो होउकामेणं॥
अणुसोयसुहो लोओ पडिसोओ आसवो सुविहियाणं।
अणुसोओ संसारो पडिसोओ तस्स उत्तारो॥*

बहुसंख्यक जनता आज अनुस्रोत में बह रही है लेकिन जिसे कुछ करना है, कार्यशील बनना है उसे प्रतिस्रोत में चलना होगा। अनुस्रोत का मार्ग यद्यपि सरल है और प्रतिस्रोत का दुःसाध्य फिर भी अनुस्रोत में चलने वाला सागर में पत्थर की तरह विलीन हो जाता है और प्रतिस्रोत में चलने वाला अपने अभीष्ट स्थान को प्राप्त कर अपना स्वरूप प्राप्त कर लेता है। अभीष्ट मार्ग कठिन जरूर है, कांटों का है फिर भी वह अभीष्ट है अतः उस पर निर्बाध चलने वाला ही अपने आपको सफलता के निकट पाता है। बिना कठिनाई तो रोटी भी नहीं खाई जाती तो साध्य को बिना किसी कष्ट के कैसे पाया जा सकता है? अणुव्रत का मार्ग प्रतिस्रोतमय है इसीलिए लोग इसे कठोर साधना कहते हैं। भले ही कहें पर यह भी तो सही ही है कि यह व्यक्ति को अपने लक्ष्य तक पहुंचाने वाला है।

अणुव्रतों का मार्ग

कई व्यक्तियों का प्रश्न होता है—अणुव्रतों को चलाने की क्या आव

---

* दशवैकालिक सूत्र चूलिका २, ३

श्यकता थी ? किन्तु अणुव्रत आज कोई नवीन तो नही है। जैन, बौद्ध, वैदिक आदि धर्म-परम्पराओ मे प्राचीन काल से ही इनका विधान किसी न किसी रूप मे किया गया है। महाव्रती जहा पूर्ण निराश्रय मार्ग मे चलता है, अणुव्रती वहा अपनी सासारिक सुख-सुविधाओ का भी कुछ विचार रखता है। अणुव्रती का अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होता है। पर वह अणुव्रती ही बना है, अत सकल्प पूर्वक हिंसा से विरत होता है। जहा राष्ट्र की, समाज की व व्यक्तिगत सम्पत्ति या कीर्ति पर आक्रमण होता है, वहा वह उसका प्रतिकार भी करता है। क्योकि वह समाज से बन्धा हुआ है, अत रक्षात्मक लडाई के लिए अपवाद रखता है। वह झूठ बोलना नही चाहता, उसे वह पाप समझता है, फिर भी सामाजिक प्राणी होने पर ऐसा न हो सकने से वह कम से कम अनर्थकारी असत्य व ऐसा असत्य जिससे उसकी राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक व वैयक्तिक नैतिक सतह भी नीचे की ओर खिसकती है, बोलने से विरत होना अपना कर्तव्य मानता है। वह पूर्णत अपरिग्रही नही बन सकता, क्योकि वह समाज मे रहकर स्वाभिमान पूर्वक ही जीना चाहता है। उसे भोजन भी चाहिए, वस्त्र, मकान व जीवन के अन्य साधन भी चाहिए। उनकी पूर्ति के लिए वह भिक्षा-वृत्ति उचित नही मानता, अत वह पूर्णत सयमी नही होता, फिर भी वह शोषण व अन्यायाचरण के द्वारा धन-सग्रह करना नही चाहता। केवल अपनी आवश्यकता की पूर्ति ही उसका दृष्टिकोण होता है। वह मानता है—पूर्ण सयम अच्छा है, परन्तु मै पूर्ण सयमी बनने का अपने मे सामर्थ्य नही रखता, अत अणुव्रती ही बनता हू।

परिवर्तित दृष्टिकोण

एक समय था जब अणुव्रत का मार्ग इतना कठिन नही था। उस समय मानव के जीवन मे प्रामाणिकता थी। वे पू जी का सग्रह करते थे, पर शोषण और अन्याय के द्वारा नही। युग ने करवट ली। लोग भौतिक विकास की बातें करने लगे। धीरे-धीरे उस विकास का चक्र जोर से घूमने लगा। लोग उसे 'विकासवादीयुग' कहने लगे। किन्तु मुझे लगता है कि यह ह्रास का युग है जहाँ चैतन्य का विकास ही विकास समझा जाता था, वहा भौतिक विकास को—जडवाद की वृद्धि को विकास कहा जाने लगा है। युग की स्थितियो ने मानव के दृष्टिकोण को भी परिवर्तित कर दिया है।

दृष्टि-दोष

दृष्टि-दोष के परिणाम यहाँ तक सामने आने लगे हैं कि कुछ समझदार व्यक्ति अहिंसा को अव्यावहारिक बताने लगे हैं। सत्य-पालन व अपरिग्रह व्यवहार को बीते युग की बातें कहने लगे हैं। यह सुनकर मार्मिक पीड़ा होती है। अहिंसा का व्यवहार से पालन नहीं किया जा सकता, सत्य जीवन में उतारा नहीं जा सकता, अतः उनको अव्यावहारिक या बीते युग का कह दिया जाता है, पर मेरी दृष्टि में ये नास्तिकत्व और मिथ्यादृष्टि के परिणाम हैं। दृष्टियाँ दो होती हैं—सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। सम्यक्दृष्टि पाप नहीं करता, ऐसी बात नहीं है, पर वह उसे समझता पाप ही है। अपने पाप को वह धर्म की ओट में छुपाना नहीं चाहता। मिथ्यात्वी गलत को भी सही कहता है। आज इस जड़वादी युग में मिथ्यादृष्टि का विस्तार हो रहा है। इसीका नाम दृष्टि दोष है।

अर्थवादी दृष्टिकोण

यदि मिल-मालिकों को शोषण छोड़ने व पूँजी का मोह त्यागने की प्रेरणा दी जाती है तो उत्तर मिलता है—यह तो पुण्य-बन्धन का फल है। पूर्व भव के पुण्य-संचय से हमें यह सम्पत्ति मिली है। मुझे इस बात पर हँसी आती है। भले ही वे कर्म का फल न मानें, कर्मवाद के दर्शन से अभिज्ञ न हों, फिर भी उनके स्वार्थों पर कुठाराघात होता है, अतः कर्मवाद की ओट में वे सब कुछ छिपा देना चाहते हैं। स्वार्थ-पोषण के लिए कर्मवाद की दुहाई देना सचमुच आश्चर्य की बात है। इसी प्रकार अन्य समृद्ध व्यक्तियों से भी कहा जाता है तो यही उत्तर मिलता है। एक चिन्तक इसका यह निष्कर्ष निकालता है कि मनुष्य का दृष्टिकोण नितान्त अर्थवादी बन गया है। आज का मनुष्य 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' को अपना आधार बनाकर उस पर अपने भावी जीवन का महल खड़ा करना चाहता है। ऐसी स्थिति में भर्तृहरि के उस पद्य का स्मरण हो आना भी स्वाभाविक है जिसमें उन्होंने अर्थवादी मनुष्य की मनोभावनाओं का बहुत ही यथार्थ चित्रण किया है। वह पद्य इस प्रकार है —

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता-
च्छीलं शैलतटात् पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना।

शौर्यं वैरिणि वज्रमाशु निपतात् त्वर्थो स्तु न केवलम्,
येनैकेन विना गुणास्तृणलव प्राया समस्ता इमे ॥

मनुष्य की सग्रहशील वृत्ति को देखकर कवि अव्यक्त प्रश्न करता है और उससे जो उत्तर प्राप्त हो सकता है, उसे उसी की भाषा मे अपनी कविता में प्रमुख रूप से आबद्ध करता है। कवि का प्रश्न है—हे मनुष्य! इस प्रकार केवल एक धन के पीछे ही पडे रहने से तेरी जाति (समाज) रसातल की ओर चली जायेगी ? उत्तर मिलता है—चली जाये, मुझे उससे क्या लेना-देना।

प्रश्न—तेरे सारे गुण कलकित होकर रसातल मे चले जायेंगे।

उत्तर—चले जायें।

प्रश्न—कुलाचार नष्ट हो जायेगा, जैसे पर्वत से गिर कर कोई भी वस्तु चूर-चूर हो जाती है।

उत्तर—हो जाये।

प्रश्न—तेरा परिवार तेरी इस सग्रह-वृत्ति पर क्या कहेगा, यह भी तो तू सोचता होगा ?

उत्तर—परिवार भाड मे जाए।

प्रश्न—इस प्रकार तू अपने शौर्य को क्यो लज्जित करता है ?

उत्तर—शौर्य क्या होता है ? चाहे उस पर वज्रपात भी हो जाये, मेरा उसमे क्या बिगडने का है ?

प्रश्न—तो तुझे क्या चाहिये ?

उत्तर—केवल धन, जिसके बिना ये सारे गुण तृण के समान हैं। यदि मेरे पास धन है तो सब कुछ है और नही है तो कुछ भी नही है।

अहिंसकों का कर्त्तव्य

ऐसी स्थिति मे अहिंसको का कर्तव्य होता है कि इस प्रकार के गलत दृष्टिकोण को सुधारें। यह एक बहुत बडा सुधार होगा। परतन्त्रता के समय मे जिस तरह लोग 'अग्रेजो! भारत छोडो' का नारा लगाते थे, उस तरह आज आवश्यकता इस नारे की है—'बन्धुओ! स्वार्थ छोडो।' ऐसा लगता है कि विदेशी शासन मे व्यक्ति जितना गुलाम नही था, आज उससे भी अधिक गुलाम है। व्यक्ति आज जितना अपने स्तर से नीचे खिसक कर स्वार्थी बन

रहा है सम्भव है उतना पहले कभी नहीं रहा होगा। यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सब व्यक्ति पूर्णतः आचारवान् किसी भी युग में नहीं बन सकते। फिर भी यह नहीं होना चाहिए कि समाज के अधिकांश व्यक्ति एक प्रकार के नैतिक मानबिन्दु से भी नीचे चले जायें। जिस प्रकार तापमान शून्य डिग्री से नीचे चला जाता है तो जीवन दूभर हो जाता है उसी प्रकार समाज के अधिकांश व्यक्ति भी यदि सर्वसाधारण नैतिक मानबिन्दु से नीचे खिसक जाते हैं तो समाज किस प्रकार स्वस्थ रह सकता है प्रत्येक व्यक्ति इस पर चिन्तन कर सकता है। यद्यपि हमारा यह दावा नहीं है कि हम सारे विश्व को अहिंसक बना देंगे या उसे पूर्णतः आचार-कुशल कर देंगे। पर प्रयत्न यह है कि जिस तरह हींग और कस्तूरी के संसर्ग में हींग की दुर्गन्ध से कस्तूरी का विनाश हो जाता है उसी तरह आज के युग में जीवन के बदलते हुए इन मानदण्डों में व अनैतिक कार्यों के साहचर्य से मानव-हृदय से कहीं अहिंसा का सर्वथा लोप ही न हो जाये। यद्यपि लोप तो नहीं होगा यह तो पूर्ण विश्वास है फिर भी हिंसा अहिंसा पर इतनी अधिक न छा जाये कि अहिंसा प्रभावहीन हो जाये और हिंसा को खुलकर खेलने का मौका मिल जाये। हिंसा के प्रचार के लिए आज जितने उपक्रम किये जा रहे हैं अगर उतने अहिंसा के प्रचार के लिए किये जाते तो विश्व-शान्ति की पुकार करनी नहीं पड़ती। अपितु शान्ति में ही स्वयं व्यक्ति का प्रतिष्ठान होता। आज अहिंसकों की संख्या कितनी है? और जो हैं उनमें भी अधिकांश अहिंसक केवल अहिंसा की बात ही करते हैं। उनके जीवन-व्यवहार में सात्त्विकता व प्रामाणिकता भी नहीं है और हृदय में अहिंसा के प्रचार की उतनी तड़प भी नहीं। बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जिनके हृदय में अहिंसा के प्रचार की सच्ची तड़प है। अहिंसकों का यही कार्य है कि अहिंसा के पलड़े को भारी रखें। यह काम इतना सरल नहीं है पर प्रकाश की रेखा अवश्य है। यदि सच्ची लगन के साथ काम किया जाये तो बहुत कुछ सफलता मिल सकती है।

वार्तमानिक नाना विषम स्थितियों को सुधारने के लिए आवश्यकता अनुभव हुई कि एक ऐसी योजना प्रस्तुत की जाये जिससे विषमता का शमीकरण हो। इसके ही परिणामस्वरूप अणुव्रती-संघ की स्थापना की गई।

म मानता हूँ—यह कोई आर्थिक, राजनैतिक या भौतिक सुख-सुविधाएं प्रदान करने वाली योजना नहीं है, बल्कि एकमात्र चरित्र-उत्थान की योजना है। इस योजना में सम्मिलित होने वाला व्यक्ति शोषण से पूंजी का उपार्जन नहीं कर सकता, ब्लैक नहीं कर सकता व अन्यान्य अनैतिक कार्यों को भी अपने जीवन में प्रश्रय नहीं दे सकता। वह तो सत्य और अहिंसा का निष्ठावान् होता है।

गुजरात प्रदेश में इस योजना को लेकर मेरा प्रथम आगमन हुआ है। लोग त्याग और चरित्र की आदर्श-परम्परा को समझते हुए इस योजना को अपनायें।

[१४ मई, १९५४ को अहमदाबाद में गुजरात प्रादेशिक भारत सेवक समाज द्वारा आयोजित अणुव्रत प्रेरणा दिवस के अवसर पर प्रदत्त प्रवचन]

: २४ :

अणुव्रत की आधार शिला

महाव्रत और अणुव्रत

आचार-भेद से व्रत भी अणुव्रत और महाव्रत इन दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। महाव्रत यानी पूर्ण व्रत, अणुव्रत यानी छोटे-छोटे व्रत। यह कोई व्रतों का विभाग नहीं है पर ग्रहण करने वालों की क्षमता के आधार पर व्रत भी महा और अणु इन रूपों में आ जाते हैं। जो महाव्रत का पालन नहीं कर सकता वह अणुव्रतों को ग्रहण करता है। जैसे कोई एक व्यक्ति पूरी रोटी खा लेता है, दूसरा एक साथ पूरी रोटी नहीं खा सकता तो वह टुकड़े-टुकड़े करके कई बार खाता है। ठीक इसी प्रकार जो महाव्रत का पालन नहीं कर सकता वह अणुव्रतों का पालन करता है।

अणुव्रतों को कोई भी ग्रहण कर सकता है। एक किसान, स्वर्णकार, नेता, वैद्य, वकील, कार्यकर्त्ता आदि सब कोई अपना अपना धन्धा करते हुए भी अणुव्रती बन सकते हैं। अणुव्रत का लक्ष्य है—कोई भी व्यक्ति चाहे जो धन्धा करता है पर उसमें विकृति नहीं आनी चाहिए। इस प्रकार अणुव्रत प्रत्येक व्यक्ति को, जहाँ वह रह रहा है, जीवन को मांजने की बात बताता है।

परिस्थिति और नैतिकता

अणुव्रत की आधारशिला है—संयम। इसीलिए हम संयम के आधार पर ही जन-जीवन का परिष्कार करना चाहते हैं। कई लोग परिस्थितियों को बदल कर जीवन को बदलने में विश्वास करते हैं पर बाहरी रूप से यह कुछ सही लगते हुए भी अन्ततः पूर्ण सही नहीं है। क्योंकि परिस्थिति के बदल जाने से जीवन बदल ही जाये यह एकान्ततः सम्भव नहीं है। यद्यपि अत्यन्त विपन्न अवस्था में परिस्थितियां मनुष्य को अपने कर्तव्य-पथ से विचलित कर

सकती है। 'बुभुक्षित ,किं न करोति पापम्' यह एक उक्ति है, पर कुछ ऐसे उदाहरण भी सामने आते है, जहा अति सकट और अभाव मे रहकर भी मनुष्य अपनी मानवता की रक्षा करते है। सम्भवत आज तो नैतिक लोगो मे उनकी सख्या अधिक होगी, जो अभाव मे पलते है। वे देश जो साधन सम्पन्न है और जहा अभाव सम्भवत बहुत कम है, वहा भी अनैतिकता न हो ऐसी बात नही है। इसलिए अनीति को केवल अभावोत्पन्न मान लेना ही उचित नही लगता। फिर भी अभाव को मिटाने के लिए कुछ लोग प्रयत्न करते ही है। हमारा काम है, परिस्थिति के रहते हुए भी मनुष्य को सयम की ओर प्रेरित करना । साधना का पहला सूत्र भी यही है कि मनुष्य परि-स्थिति के रहते हुए भी मानवता की रक्षा करे। यद्यपि यह साधना कठिन है, पर है उत्कृष्ट कोटि की। यह कोई बडी बात नही है कि धन प्राप्त हो जाने पर मनुष्य अनीति न करे। पर बडी बात तो यह है—'तच्चित्र यदि निर्ध-नोपि मनुज पाप न कुर्यात् क्वचित्' अर्थात् निधन होकर भी मनुष्य पाप-कर्म नही करे। विकार के साधन रहने पर भी जो मनुष्य विकारग्रस्त नही होते, वे महान् हैं। शास्त्रो मे कहा गया है—

> वत्थ गन्ध मलकार इत्थिओ सयणाणि य।
> अच्छदा जे न भु जन्ति न से चाइत्ति वुच्चइ ॥
> जेय कन्ते पिए भोए लद्धे विपिट्ठी कुव्वइ।
> साहीणे चयइ भोए से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥

साधन सामग्री के प्राप्त नही होने पर जो उनका उपभोग नही करता है, वह त्यागी नही है। त्यागी तो वह है, जो उनके प्राप्त होने पर भी उन्हे ठुकरा देता है। इस दृष्टि से अणुव्रत का लक्ष्य है, परिस्थिति के रहते हुए भी उसका सामना किया जाये।

सब धर्मों का समन्वित रूप

अब तक भी कुछ लोग अणुव्रत आन्दोलन को साम्प्रदायिक मानते है, जब कि सारे राष्ट्र मे इसे मान्यता मिल चुकी है। इसे तेरापथ का नवीनीकरण मानना बिल्कुल गलत है। अणुव्रत किसी भी धर्म विशेष का आन्दोलन नही है, वल्कि सब धर्मो का समन्वित रूप है। दूसरी

दृष्टि से नैतिक पक्ष पर विशेष बल देने से अणुव्रत-आन्दोलन धार्मिक की अपेक्षा नैतिक आन्दोलन है। इसीलिए अपने जीवन को नैतिक बना कर एक मनुष्य किसी भी धर्म विशेष को मानता है तो अणुव्रत उसका हाथ नहीं पकड़ता। एक अणुव्रती यदि वह अपने जीवन को उन्नत बना लेता है फिर चाहे वह मूर्ति-पूजा करता है चाहे वह मस्जिद में जाता है या और भी किसी धर्म विशेष की उपासना करता है तो इससे अणुव्रत में बाधा नहीं आती। यद्यपि अणुव्रत को अपनाकर मनुष्य धार्मिक बनता है पर वह किसी धर्म विशेष की मान्यता को प्रधानता देता है या नहीं यह प्रश्न कोई विशेष महत्व नहीं रखता। एक अणुव्रती तेरापंथी भी हो यह आवश्यक नहीं। इस दृष्टि से अणुव्रत धार्मिक आन्दोलन की अपेक्षा नैतिक आन्दोलन अधिक है।

अणुव्रत आन्दोलन व्रत का आन्दोलन है। जो अणुव्रती बनता है उसे कुछ व्रत-ग्रहण करने पड़ते हैं। पर यह भूल नहीं जाना चाहिए कि केवल व्रत-ग्रहण ही सब कुछ नहीं है। व्रत तो जीवन की एक दिशा मात्र है। इससे व्यक्ति को आगे बढ़ने का रास्ता मिल जाता है पर वस्तुतः तो यह भावनामूलक है। व्रत का भंग न हो इसके लिए सचेष्ट रहना तो आवश्यक है ही पर इसके साथ-साथ व्यवहार को देखना भी अति आवश्यक है। एक काम करने में व्रत का भंग तो नहीं होता पर व्यवहार अच्छा नहीं लगता तो अणुव्रती को उस से बचना चाहिए। इस दृष्टि से अणुव्रत-नियमों से आगे भी बहुत कुछ है और वह है जीवन को सरल व वास्तविक बनाना।

अणुव्रती का व्यवसाय क्या हो ?

एक प्रश्न है अणुव्रती को किस प्रकार का व्यापार करना चाहिए ? यह प्रश्न इसलिए सामने आता है कि कहीं लघु उद्योगों को प्रश्रय दिया जा रहा है और कहीं बड़े उद्योगों को। दोनों ही प्रकार के विचार अपने-अपने पक्ष की स्थापना में तर्क-बल से काम लेते हैं। पर अणुव्रत-आन्दोलन इस तात्त्विक विवाद में नहीं जाता। उसका तो यही सहज परामर्श है कि कोई व्यक्ति चाहे जो भी व्यवसाय करता है, पर उसमें अनैतिकता न बरते। यह आवश्यक नहीं है कि अणुव्रती अपने-अपने क्षेत्रों से उखड़ कर एक ही प्रकार के व्यापार के पीछे लग जायें। इससे अणुव्रत एक क्षेत्र विशेष में बन्ध जाता है। अणुव्रत

तो एक खुली चीज है। हर एक व्यक्ति के लिए, चाहे वह किसी भी क्षेत्र मे हो, अनैतिकता न करे यह आवश्यक है। जो अनैतिक व्यापार है, वे तो स्वय पहले ही छूट जाते है। अत उनमे अनैतिकता का प्रश्न ही क्या ? पर इसके बाद जो व्यापार शेष रह जाते है, उनमे भी अनैतिकता नही हो, यह अणुव्रत का लक्ष्य है। इस दृष्टि से अणुव्रत का क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है।

व्यापार-निवृत्त व्यक्ति व अणुव्रत

कई लोगो का विचार है—अणुव्रती तो वे ही बन सकते है, जो व्यापार से निवृत्त है। जो व्यापार करते है उन्हे अनेक प्रकार से अनैतिक काम करने पडते है, अत वे ही व्यक्ति जो व्यापार से अवकाश ग्रहण कर चुके है, अणुव्रती बन सकते है। पर यह विचार सही नही है। कल ही एक भाई सुना रहा था, उसने व्यापार मे एक व्रत अपनाया, किसी भी एक प्रकार की चीज के दो मूल्य नही बताना। बच्चा, बूढा, युवक, महिला, ग्रामीण कोई भी खरीदने वाला आये तो उसे एक ही मूल्य बताना। सचाई और ईमानदारी पूर्वक उसे माल देना। इसका असर इतना हुआ कि उसकी दुकान सारे गाव मे अच्छी चलने लगी। दूसरे दुकानदार भी इस अनुभव से प्रभावित हुए और उन्होने भी अपनी दुकान पर यही विधि अपनाली। इस प्रकार नैतिक व्यापार के द्वारा उसकी अपनी ही दुकान अच्छी नही चलने लगी, बल्कि सारे गाव मे एक प्रकार का नैतिक वायु-मण्डल बन गया। वह भाई कोई अवकाश प्राप्त व्यापारी नही है। अच्छी तरह से उसका व्यापार चलता है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि अणुव्रत तो निवृत्त आदमियो के लिए ही हो सकता है ?

बहुत सारे लोग डरते है—अणुव्रत का पालन कैसे कर सकें? पर अणुव्रत तो जीवन की सर्वसामान्य भूमिका है। इसमे भयभीत होने की क्या आवश्यकता ? एक बार व्रतो का जीवन मे साक्षात् अनुभव कर लेने के अनन्तर तो प्रत्येक व्यक्ति को अनुपम शान्ति मिलती है। जब तक व्यक्ति इस अनुभव से दूर रहेगा, उसे भय हो सकता है, पर ज्यो-ज्यो वह इसके समीप आयेगा, उसे अपना स्वभाव ही उसमे दृष्टिगत होगा।

[७ जुलाई, १९५७ के प्रवचन के आधार पर]

२५

अणुव्रत-ग्रहण में दो बाधाएं

शिक्षाओं में आचरण की अनेक बड़ी-बड़ी बातें हैं पर सब मनुष्य सारी बातों को ग्रहण नहीं कर सकते। अतः अणुव्रत द्वारा हमने इतना तो कर दिया है कि मनुष्य कम से कम इतनी अहिंसा का तो पालन करे ही। अभी तक इस ओर लोगों की प्रवृत्ति कम है। जिस प्रकार चलते चलते सामने बाधा आ जाने पर चला नहीं जाता उसी प्रकार अणुव्रत के आचरण में भी कुछ बाधाएं हैं। वे दो प्रकार की हैं—एक तो है विचार की और दूसरी है करने की। विचार के बारे में कुछ लोगों के इसे समझने में उलझन पैदा हो गई। कुछ लोग यह समझने लगे हैं कि यह उचित है या नहीं? कहीं यह गलत रास्ता तो नहीं है? बारह व्रतों की पहले व्यवस्था थी ही तो फिर अणुव्रतों की पुनर्रचना करने की क्या आवश्यकता पड़ी? कहीं इसके प्रवर्तन के पीछे अपनी ख्याति की भावना तो नहीं है? इस प्रकार के प्रश्नों से अणुव्रतों के आचरण में एक अवरोध पैदा हो गया है और लोग इससे कुछ कुछ गुमराह हो गये हैं। उन्होंने सोचा कि कुछ लोग जो ऐसी बातें करते हैं सचमुच ही यह कहीं भ्रम ही तो नहीं है? पर उन्होंने यह नहीं सोचा कि अणुव्रतों में जो बातें बताई गई हैं वे उनके जीवन के लिए आवश्यक हैं या नहीं? जिस प्रकार भूखा मनुष्य सामने भोजन आने पर यह नहीं सोचता कि यह कहां से आया है? क्यों आया है? यह कैसे बना है? वह तो तत्काल उसे खाने को बैठ जाता है उसी प्रकार अनैतिकता के इस दुष्काल में जनता को चाहिए तो यह था कि जब उसके सामने यह योजना आई तो क्या और कैसे के प्रश्नों को छोड़कर उसे अपने जीवन में स्थान देती। पर जीवन में किसे उतारना था? उन्हें तो बहाना बनाना

था। कुछ एक मनुष्यो का यह स्वभाव होता है कि उन्हे जिसे नही अपनाना होता है, उसके लिए वहाना ढूढते है। मेरी समझ मे अणुव्रतो के वारे मे भी उपरोक्त प्रश्नो का कारण वहाना ही हो सकता है। जिन लोगो को अणुव्रत अपनाना नही था और अपने आपको ऊचा प्रमाणित करना भी आवश्यक था, वे लोग सीधे तो अणुव्रतो को गलत कैसे कह सकते थे ? अत. उन्होने ऐसे प्रश्नो का जाल विछाकर जनता को गुमराह करना आरम्भ कर दिया। नही तो भला सत्य और अहिंसा के प्रसार के वारे मे किसी के भिन्न विचार हो ही कैसे सकते है ? पर प्रसन्नता की वात है कि प्राय लोगो के वे प्रश्न अव समाप्त हो गये है। अव प्राय लोग यह समझने लगे है कि इसके पीछे कोई दूसरा लक्ष्य नही है। यह तो जीवन-शुद्धि का ही एक मार्ग व आपवाणी की अनुकृति है। इस प्रकार यह वैचारिक वाधा तो एक प्रकार से समाप्त हो गई है।

अणुव्रत के आचरण की दूसरी वाधा थी कि लोग यह समझने लगे कि कार्यशील व्यक्ति तो इसे अपना ही नही सकता। समाज की प्राय यह धारणा थी और आज भी है कि यह तो अवकाश प्राप्त (रिटायर्ड) व्यक्तियो का ही काम है, पर मेरी समझ मे यह नही आया कि अवकाश प्राप्त है कौन ? मरने से पहले तो किसी को भी अवकाश प्राप्त होना मुश्किल है। हर व्यक्ति के पीछे कोई न कोई काम तो लगा ही रहता है। इस माने में अवकाश प्राप्त किसे माना जाये ? हा, मरने के वाद फिर कोई काम नही रहता, फिर व्यक्ति उस जन्म की दृष्टि से अवकाश प्राप्त हो सकता है, पर तव जव मनुष्य स्वय ही नही रह जाता तो अणुव्रतो के आचरण का प्रश्न ही कहा रह जाता है ?

लोग समझते हैं—मरने के वाद मुक्ति मिल जाती है, पर यह सही नही है। जीवन तो आगे से आगे चलता ही जाता है। कर्म-क्षय होने पर मोक्ष भी मिलता है, पर केवल मरने से ही नही मिलता। मोक्ष तो प्राय इसी जीवन मे मिल जाता है। यहा से देह-मुक्ति होने पर तो आत्मा उस स्थान मे व्यवस्थित हो जाती है, जहां से आगे उसका गति सहायक तत्त्व नही रह जाता। अत कार्यशील जीवन मे ही जो व्यक्ति अणुव्रती वनेगा, वह अपने

जीवन में शान्ति का अनुभव करेगा।

आनन्द की परिभाषा

अणुव्रत का अर्थ है—शान्ति और आनन्द। पर यह आनन्द वस्तु-निरपेक्ष है। पदार्थ प्राप्ति पर जो आनन्द मिलता है वह तो क्षणिक होता है। वस्तु मिलती रहेगी तब तक तो आनन्द रहेगा और वस्तु नहीं मिली तो फिर दुःख होने लगेगा। किन्तु पदार्थ-निरपेक्ष आनन्द में यह बात नहीं है। उससे जो आनन्द होगा वह वस्तु प्राप्ति पर निर्भर है ही नहीं अतः वह स्थायी होगा। जब भी मनुष्य उसका स्मरण करेगा तभी उसे आनन्द मिलेगा। कल मैंने उपवास किया था। एक भाई ने पूछा—उपवास में शान्ति तो है? मैंने कहा—आज मुझे कल से अधिक शान्ति है। क्योंकि मैंने अनुभव किया कि उपवास में जो आनन्द मिलता है वह खाने में नहीं मिलता। उस आनन्द की बात ही और होती है। जैसा मैंने अनुभव किया वैसा ही शायद औरों को होता होगा। वह आनन्द मर कर प्राप्त किया जाये यह तो है ही नहीं। इसलिए अणुव्रत-आन्दोलन मृतकों के लिए नहीं है वह जीवित लोगों के लिए है, अपने-अपने काम में लगे हुए लोगों के लिए है।

आलोचना प्रत्यालोचना

बहुत से लोग सोचते हैं—अणुव्रत तो बहुत भारी चीज है पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। कम से कम एक बार अणुव्रत की नियमावली को तो ध्यानपूर्वक पढ़ें। उसके बहुत से नियम तो सहज ही हैं। कुछ ऐसे नियम हैं, जिनमें सम्भवतः कुछ व्यक्ति अटक भी जायें पर उन नियमों को आलोचना-प्रत्यालोचना और चिन्तन के लिए रखने दें। धीरे धीरे हृदय में स्वतः अणुव्रत के अनुकूल एक भूमि तैयार हो जायेगी। मैंने देखा—यहां अभी दो दिन पहले खूब जोर से वर्षा आई। बहुत से घर पानी से भर गये। धीरे-धीरे वह पानी बह गया या सूख गया। आज लोग अपने घरों में अटके हुए पानी को अलग-अलग तरीकों से निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसी प्रकार आप भी बहुत से अणुव्रत-नियमों से तो सहज ही निकल जायेंगे क्योंकि आपका जीवन उनके अनुकूल है। कुछ व्रतों में जहां आप अटक जाते

२६ :

अणुव्रत का मार्ग

शान्ति की परिभाषा

आज की दुनिया में शान्ति कौन नहीं चाहता ? पर प्रश्न यह है कि शान्ति के माने क्या है ? शास्त्रों में इस प्रश्न के उत्तर में कहा है—सवि निरोह भाव—निरोध ही शान्ति है। जब तक वृत्तियां सुखी रहेंगी तब तक शान्ति का निर्बाध पथ पाना भी असम्भव है। अतः कोई शान्ति चाहेगा तो उसे निवृत्ति का पथ अपनाना पड़ेगा। यदि कोई पूर्ण निवृत्ति नहीं कर सके तो क्या करना चाहिए ? उसके लिए शास्त्रों में कहा गया है—सुद्धेण उवेइ मोक्ख—शुद्ध क्रिया के द्वारा मोक्ष—शान्ति पाई जा सकती है। शुद्ध क्रिया करने का अर्थ है—अशुद्ध से निवृत्ति। उसका निवृत्यंश तो शान्ति का साधन है ही और शुद्धांश भी। यदि कोई अशुद्ध क्रिया से पूर्णतः निवृत्त नहीं हो सकता तो कम से कम अशुद्ध प्रवृत्ति का त्याग करे। उसके त्याग के बाद शुद्ध स्वयं शेष रह जायेगा। वह भी शान्ति का सन्देशवाही है।

निषेध और विधेय

अणुव्रत आन्दोलन के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि उसके नियम निषेधपरक अधिक हैं और विधेयक कम। यह सच है कि जीवन का निरोध पक्ष निर्दोष है पर उसका विधेयक पक्ष भी बहुत बन सकता है। इसीलिए कहा गया है—यदि तुम प्रवृत्ति भी करो तो शुद्ध करो। उसमें तुम्हें शान्ति—शाश्वत शान्ति प्राप्त होगी। अतः आर्षवाणी के आधार पर मैं कह सकता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अशुद्ध वृत्तियों का निरोध करे और यदि यह सम्भव न हो तो अधिक से अधिक सत्प्रवृत्ति करे, यही अणुव्रत का सही मार्ग है।

इसी भावना को हिंसा और अहिंसा शब्द से समझा सकता है। अहिंसा यानी निवृत्ति तथा शुद्ध प्रवृत्ति। हिंसा यानी—अशुद्ध प्रवृत्ति। प्रश्न हो सकता है कि व्यापक हिंसा है या अहिंसा? कुछ लोग हिंसा को व्यापक मानते है, पर मेरी दृष्टि मे अहिंसा व्यापक है। क्योंकि यदि कोई हिंसा करेगा तो सम्भवत वह अपने शत्रुओ की ही करेगा। या कही आवश्यकतावश हिंसा करेगा। ज्यादा हुआ तो कुतूहलवश या प्रमादवश किसी की हिंसा कर लेगा। पर दिन के २४ घण्टो मे से वह तो केवल सीमित काल के लिए ही हुई। कोई भी मनुष्य क्रिया रूप मे प्रतिक्षण हिंसा नही कर सकता। अहिंसक यदि वह चाहे तो प्रतिक्षण बन सकता है। तब व्यापक हिंसा है या अहिंसा, यह स्वत स्पष्ट हो जाता है। इस दृष्टि से अहिंसा के नियम बता दिये जायें तो हिंसा अपने आप निरुद्ध हो जायेगी।

निषेध तत्त्व व्यापक होते हुए भी थोडे मे बताया जा सकता है। विधायक तत्त्व उस अपेक्षा से कम व्यापक होते हुए भी थोडे मे नही बताया जा सकता। इसलिए अणुव्रतो मे निषेध को अधिक स्थान दिया गया है। वैसे निषेध और विधेय के दोनो रास्ते असत् निवृत्ति और सत् प्रवृत्ति के रूप मे प्रस्तुत कर दिये गये है। अपनी शक्ति के अनुसार अपने निर्माण मे इन्हे ग्रहण किया जा सकता है।

रक्षक ही भक्षक

अणुव्रत आदर्श को मनुष्य जब तक नही अपनायेगा तब तक न तो उसका जीवन शुद्ध बनेगा और न उसकी दिशा ही। आज मनुष्य अतिशय क्रूर बन गया है। जो लोग रक्षक थे, वे भी भक्षक बन गये है। एक जगल मे एक बार कुछ पशुओ ने सोचा—हम निर्बल है, अत कोई भी मार डालता है। हमे कोई ऐसा उपाय खोजना चाहिए, जिससे कोई भी शक्तिधर पशु हमारी ओर आख उठाकर देख भी न सके। उन्होने अपनी सुरक्षा के लिए एक पितृहीन शेर के बच्चे को पाल लिया। इससे अन्य पशु उससे डरने लगे और उनके पास नही आते। इस प्रकार एक तरह से वे सारे अभय हो गये। थोडे दिन तक यह क्रम रहा। शेर का बच्चा भी धीरे-धीरे बडा होने लगा। अकस्मात् एक दिन उस शेर के बच्चे ने एक अन्य शेर को दूसरे जानवरो को मारते देखा

२६ :

अणुव्रत का मार्ग

शान्ति की परिभाषा

आज की दुनिया में शान्ति कौन नहीं चाहता ? पर प्रश्न यह है कि शान्ति के माने क्या है ? शास्त्रों में इस प्रश्न के उत्तर में कहा है—सति निरोह माहु—निरोध ही शान्ति है। जब तक वृत्तियां खुली रहेंगी तब तक शान्ति का निर्बाध पथ पाना भी असम्भव है। अतः कोई शान्ति चाहेगा तो उसे निवृत्ति का पथ अपनाना पड़ेगा। यदि कोई पूर्ण निवृत्ति नहीं कर सके तो क्या करना चाहिए ? उसके लिए शास्त्रों में कहा गया है—सुद्धेण ठवेह मोक्ख—शुद्ध क्रिया के द्वारा मोक्ष—शान्ति पाई जा सकती है। शुद्ध क्रिया करने का अर्थ है—अशुद्ध से निवृत्ति। उसका निवृत्यंश तो शान्ति का साधन है ही और शुद्धत्व भी। यदि कोई अशुद्ध क्रिया से पूर्णतः निवृत्त नहीं हो सकता तो कम से कम अशुद्ध प्रवृत्ति का त्याग करे। उसके त्याग के बाद शुद्ध स्वयं शेष रह जायेगा। यह भी शान्ति का सन्देशवाही है।

निषेध और विधेय

अणुव्रत आन्दोलन के बारे में कुछ लोगों का कहना है कि इसके नियम निषेधपरक अधिक हैं और विधेयक कम। यह सच है कि जीवन का निरोध पक्ष निर्बाध है, पर उसका विधेयक पक्ष भी बहुत बन सकता है। इसीलिए कहा गया है—यदि तुम प्रवृत्ति भी करो तो शुद्ध करो। उसमें तुम्हें शान्ति—शाश्वत शान्ति प्राप्त होगी। अतः आर्षवाणी के आधार पर मैं कह सकता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अशुद्ध वृत्तियों का निरोध करे और यदि यह सम्भव न हो तो अधिक से अधिक सद्प्रवृत्ति करे, यही अणुव्रत का सही मार्ग है।

तो उसके भी सुप्त हिंसा-वृत्ति जागृत हो उठी । उसने भी अपना पंजा उठाया और पास खड़े एक पशु पर दे मारा । वह उसी क्षण धराशायी हो गया । शेर के बच्चे को भी अपनी शक्ति का भान हुआ और साथ ही साथ मांस का स्वाद भी उसे अच्छा लगा । अब वह प्रतिदिन अपने गिरोह के पशुओं को मारने व खाने लगा । जो रक्षक था वही भक्षक बन गया तो उस गिरोह पशुओं की क्या स्थिति हुई होगी ? क्या वैसी ही स्थिति आज के समाज की नहीं हो रही है ? वे ही लोग जिन्हें रक्षा के लिए रखा गया है दूसरों का विनाश करते नहीं सकुचाते । वे ही वैज्ञानिक साधन जिनका निर्माण सुरक्षा के लिए हुआ था आज मनुष्य के लिए ध्वंस के साधन बन गये हैं ।

मनुष्य के हाथ में सब कुछ है । वह चाहे तो अपने प्राप्त साधनों का दुरुपयोग कर सकता है और चाहे तो सदुपयोग भी । पर आज उनका अधिकतर दुरुपयोग ही हो रहा है । आवश्यकता है—उस दुरुपयोग को सुधारा जाये पर यह भी तो एक बहुत बड़ी समस्या है कि जो सुधारने वाले हैं वे स्वयं भी बिगड़ गये हैं । अब आज सुधार का काम किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं रहा है । वह तो सबका है । इस हेतु से ही अणुव्रत-आन्दोलन का प्रारम्भ किया गया है पर इस ओर लोगों का ध्यान कम जाता है क्योंकि आन्दोलन की पहली शर्त यही है कि सर्व प्रथम व्यक्ति स्वयं सुधरे ।

ध्वंस की ओर मनुष्य की सहज गति है । विद्यार्थी तोड़-फोड़ के कामों में आगे रहते हैं । उनको यदि चरित्र-निर्माण की बात कही जायेगी तो झट पीछे हट जायेंगे । ध्वंस सहज है निर्माण कठिन है । घड़ा फोड़ना सहज है पर बनाना मुश्किल है ।

बुढ़िया के घर चोर

अनेक लोगों से यह पूछा जाता है—आजकल क्या करते हो ? तो उत्तर मिलता है—व्यापार करते हैं पर आजकल व्यापार करना तो जान को जोखिम में डालना है । कर की धारा और ब्लैक की कालिमा से बचना तो आज असम्भव-सा हो गया है । मुझे उनकी यह दुःख भरी कहानी सुनते-सुनते हंसी आ जाती है । रोटी-कपड़े के लिए मनुष्य जब इतने कष्ट सह सकता है तो जीवन-विकास की ओर उसका ध्यान क्यों नहीं जाता ? जीवन-विकास

मे आने वाले कष्टो से वह क्यो घबडा जाता है ?

ब्लैक का पसा भी आज लोगो के लिए 'बुढिया के घर मे शर केश गगाये' वाली कहावत चरितार्थ कर रहा है। सचमुच पाप का पैसा हजम नहीं हो सकता। हम यह बात लोगो को प्रतिदिन समझाते थे, पर कुछ एक व्यक्ति हमारी उस बात को अमल मे नही लाये। उसीका यह परिणाम है कि आज डण्डे के बल पर उन्हे वे बातें माननी पड रही है। अस्तु, जो हुआ सो तो हुआ, अब भी समय है, मनुष्य चेते। जब मनुष्य पैसे के लिए तिल-तिल कर मरने को तैयार हो जाता है तो अणुव्रत के इस राजपथ पर चलने मे उसे सकट क्यो अनुभव होता है ?

अपनी छलना अपनी ही विनाशक

अपने द्वारा की गई छलना अपने लिए ही घातक होती है, यह तथ्य प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना पडेगा। एक बार राजा ने अपने कारीगर को जो कि उसके यहा काम करता-करता बूढा हो चला था, एक भव्य प्रासाद बनाने का आदेश दिया। उसके लिए पर्याप्त साधन भी जुटा दिये गये। कारीगर ने तुरन्त काम शुरू कर दिया। मन मे पाप आ गया। उसने बेईमानी की। प्रासाद को बाहर से अति सुन्दर बना दिया और अन्दर मे घटिया माल लगा दिया। आधे रुपयो का गबन कर गया। कारीगर ने प्रासाद मे राजा को पधारने व उसका उद्‌घाटन करने के लिए निवेदन किया। राजा ने देखा—महल बहुत सुन्दर बना है। उसने सभा-मण्डप मे बोलते हुए कहा—कारीगर ने महल बहुत ही सुन्दर बनाया है। मै इसकी कला पर पूर्णतया प्रसन्न हू और यह महल मै इसे ही पुरस्कार स्वरूप देता हू। वह तो मन मे छटपटाने लगा। उसने सोचा—मैने राजा के साथ छलना की थी, पर वह तो मेरे साथ ही हो गई। यह सुन्दर प्रासाद कुछ वर्षो मे ही ढह जायेगा। इसी प्रकार अनेक परिस्थितियो मे मनुष्य दूसरो के साथ छलना करता है, पर उसके परिणाम स्वरूप वह स्वय ही छला जाता है। अणुव्रत-आन्दोलन प्रत्येक व्यक्ति को सावधान करता है कि इस प्रकार छलना कोई मनुष्य तो न करे।

बहुत से लोग अणुव्रत के प्रशसक है। पर मुझे यह जानकर खेद होता है कि उनमे से ऐसे भी अनेक लोग है, जिनको यह पता नही कि

अणुव्रत के नियम कितने हैं व कौन-कौन से हैं ? ऐसा लगता है—उन लोगों का साहित्य से सम्पर्क रहता ही नहीं । इन छोटी-छोटी बातों के लिए उन्हें बार-बार कहा जाये क्या यह उचित होगा ? एक बार बम्बई में भूदान की कार्यकर्त्री महिला विमला ठक्कर से मेरे सामने ही किसी एक भाई ने भूदान के बारे में प्रश्न पूछा । महिला ने कहा—क्या आपने भूदान-साहित्य भी नहीं पढ़ा है ? उसने उस प्रश्न का जवाब नहीं दिया । अणुव्रतों के समर्थकों व प्रशंसकों का यह पहला कर्तव्य हो जाता है कि वे अणुव्रत के साहित्य को पढ़ें । बहुत-सी बात स्वयं ही समझ में आ जायेंगी । फिर अपने को भली भांति तोल कर नियमों को भी ग्रहण कर सकेंगे ।

: २७ :

अणुव्रत क्या देता है ?

मेरे सामने बहुधा यह प्रश्न आता है कि अणुव्रत युवको के लिए आकर्षक क्यो बने ? इसमे ऐसी कौन-सी विशेषता है ? मेरा उत्तर होता है—अणुव्रत तो मानव-मात्र के लिए है। चाहे वह बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष। फिर युवक उससे अलग कैसे रह सकते है ? पहले मै भी इसी प्रकार सोचा करता था कि कार्य प्रारम्भ तो कर दिया गया है, पर इसकी प्रतिक्रिया क्या होगी और परिणाम क्या निकलेगा ? जनता का इसमे आकर्षण होगा या नही। क्योकि नये कार्यों के प्रति आशंकाओ का होना स्वाभाविक भी है। पर अब देश के विभिन्न भागो मे पर्यटन करने व विभिन्न विचारको से मिलने के बाद मेरे ये विचार दूर हो गये हैं। अणुव्रत आज के युग मे अत्यन्त आवश्यक है। ये विचार केवल मेरे ही नही, पर जितने भी लोग मुझे मिले है, चाहे वे साम्यवादी हो या समाजवादी, कांग्रेसी हो या और किसी दल से सम्बन्धित, उनमे दो-चार व्यक्ति भी ऐसे नही है कि जिन्होंने अणुव्रत की आवश्यकता को स्वीकार न किया हो। उनके इन विचारो से आन्दोलन को बल मिला है।

प्रश्न यह रहता है कि अणुव्रत-आन्दोलन समाज को देता क्या है ? यह सही बात है कि अणुव्रत पैसा नहीं देगा। भला उसके प्रवर्तक के पास जब एक भी नया पैसा नही है, जिसने आकिञ्चन्य स्वीकार कर लिया है, वह क्या पैसा देगा ? और यह भी सही है कि वह सीधे तौर पर सामाजिक और राजनैतिक स्थितियो को भी नही सुधारता। इस अवस्था मे यह प्रश्न सहज है कि फिर अणुव्रत का फलितार्थ क्या होगा ? इसका समाधान है—अणुव्रत और कुछ देना नही चाहता, वह केवल दृष्टिकोण को बदलना चाहता है। मैं यह समझता हू कि अगर अणुव्रत के इस अभिप्राय को समझ लिया

गया तो सारी समस्याएं अपने आप सुलझ जायेंगी। दृष्टिकोण का परिवर्तन ही वास्तविक परिवर्तन है और वह है—भोग से त्याग की ओर का परिवर्तन विलास से सादगी की ओर का परिवर्तन। आज की दृष्टि मे बड़ा वह माना जाता है जिसके पास भोग के साधन अधिकाधिक हो पर अणुव्रत की दृष्टि यह है कि त्यागी ही सबसे बड़ा है। इस एक बात को समझ लेने वाला व्यक्ति लाखो रुपये खोकर भी दुखी नही होगा और इस एक बात को नही समझने वाला व्यक्ति लाखों रुपये पाकर भी सुखी नही हो सकता।

ज्वलन्त समस्याओं का हल

लोग कहते है—आज बेकारी बहुत फैल रही है। अणुव्रत बेकारी को किस प्रकार दूर कर सकता है? मै समझता हू वास्तविक समस्या बेकारी की नही है समस्या है—व्यय की। मै ऐसे लोगों को भी जानता हू जिनकी आय तो प्रतिमास १ रुपये है और खर्च प्रतिमास ५ रुपये का। भला वह समस्या कैसे सुलझे? यह सही है कि अणुव्रत आर्थिक समस्या को सीधे रूप से नही छूता। पर यह भी सही है कि इससे आर्थिक समस्या प्रभावित हुए बिना भी नही रहेगी। यदि जीवन सादा होगा तो व्यय भी अधिक नही होगा। फिर आर्थिक संकट भी कैसे रहेगा? क्या यह आर्थिक समस्या का समाधान नही है? जन व्यक्तियों के जीवन को भी देखा जाए जो १ रुपये मासिक मे भी अपना काम अच्छी तरह चला लेते है और उन्हें कोई अतृप्ति भी नही होती अपितु वे अधिक सुखी होते है। इस पर अणुव्रत सीधे तौर पर छूता न होकर भी परोक्ष रूप से ज्वलन्त समस्याओ का एक हल प्रस्तुत करता है।

जब तक समाज का दृष्टिकोण भोग मूलक रहेगा तब तक कोई समस्या हल होने वाली नही है। आज का वातावरण भोगमूलक है। आज हाथ से सिला कपड़ा लोग नही पहन सकते क्योकि फैशन चाहिये। अतः कपड़ा सिलाने के लिए बाजार जाना पड़ता है। इस तरह घर का श्रम उठ गया। कला उठ जायेगी तब आर्थिक बोझ पड़ेगा। तो फिर समस्या सुलझे भी तो कैसे? जहां थोड़े रुपयों से अपना काम चल सकता है, पेट भर सकता है

वहा अनेक प्रकार के पदार्थ खाए बिना चैन नही। इससे आर्थिक समस्या तो उग्र होती ही है पर साथ म स्वास्थ्य भी सन्तुलित नहीं रह सकता । इसका मूल कारण है—सयम का अभाव । अणुव्रत सयम का दृष्टिकोण देता है। उसे अपनाने पर दूसरी समस्याए अपने आप समाधान पाती जाती है।

[१० अक्टूबर, १९५६ को सरदारशहर (राजस्थान) मे अणुव्रत-आन्दोलन के सातवे वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर युवक सम्मेलन मे प्रदत्त प्रवचन]

२८

अणुव्रत का महत्त्व

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं पडिलेहिया।
सव्वे अक्कंत दुक्खा य अतो सव्वे न हिंसया॥

सूत्र कृतांग १ ११-९

सब प्रकार की युक्तियों से बुद्धिमान अन्वेषण करे तो वह जानेगा दुःख सबको अप्रिय है इसलिए वह किसी की हिंसा न करे व किसी को न सताए। अहिंसा ही परम धर्म है और अहिंसा ही सब धर्मों का सार है। धर्म के लिए किये जाने वाले सभी कार्य अहिंसा के पोषक हैं। प्रश्न हो सकता है—अहिंसा पर आज ही इतना जोर क्यों दिया जाता है? अहिंसा की महिमा सदा से गाई जाती है उसको अपनाने के लिये दी जाने वाली प्रेरणा भी कोई नई नहीं है किन्तु यह जाना हुआ तथ्य है कि अन्न और पानी की कीमत भूख और प्यास के समय ही होती है। पेट भर जाने व प्यास शान्त हो जाने के बाद उन्हें कोई याद नहीं करता। आज का जीवन हिंसा से जर्जरित व उसके थपेड़ों से क्षत-विक्षत है इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा को आशाभरी दृष्टि से देखता है। इस समय अहिंसा का उपदेश इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि मानव अपनी मानवता खो बैठा है। मानवीय भावों की अमूल्य सम्पत्ति उसके हाथों से निकल गई है। देहली में १५ अगस्त के दिन मैंने यह आशा व्यक्त की थी—क्या मानव अपनी मानवता को फिर से प्राप्त करेगा?

मनुष्य को हताश नहीं होना चाहिए और न हीनतावादी ही बनना चाहिए। निराशा में उन्नति सम्भव नहीं। आजकल प्रायः लोग कहा करते हैं कि हमारा पतन हो गया। उनको सोचना चाहिए—ऐसी विकट परिस्थितियों में भी दुनिया में अहिंसक हैं जो राग व द्वेष से परे हैं अनुकूल व

प्रतिकूल परिस्थितियो मे समभाव रखते है। अनेको ऐसे गृहस्थ भी है, जिन्होने अपने जीवन मे कभी ब्लैक नही किया। व्यापार के लेन-देन मे भी ब्लैक नही किया और यहा तक कि खाद्य सामग्री को भी ब्लैक से नही खरीदा। आज भी ब्रह्मचारी है, सत्यवादी है, स्वावलम्बन से अपना जीवन-यापन करने वाले है। यह अवश्य है कि अच्छाइयो की अपेक्षा बुराइयो का पलडा भारी है, अत बुराइयो व पतन की ओर स्वभावत ही ध्यान चला जाता है। किन्तु केवल पतन-पतन चिल्लाने से क्या होगा ? प्रतिकूल स्थिति के समय तो आवश्यकता होती है, उसके विरुद्ध जिहाद बुलन्द करने की, उचित कदम उठाने की। धैर्य के साथ प्रयास किय विना प्रतिकूल परिस्थिति दूर भी कैसे हो सकती है ? विरोध की स्थिति मे घबरा जाने वाले दुनिया मे कर भी क्या सकते है ? आशावाद मे सफलता रहती है। धैर्य उन्नति का प्रतीक है। विशेष आशा तथा धैय को लेकर ही साधुओ द्वारा यह नैतिक आन्दोलन सतत जारी रहता है।

लोग कहते है—'महाराज ! आपको क्या आवश्यकता है, इन नैतिक आन्दोलनो की, आप अपनी साधना करें। समाज के उत्थान और पतन से आपको क्या प्रयोजन है ?' ऐसा कहने वाले भूल करते है। समाज की अन्य स्थितियो से हमारा कोई सम्पर्क नही, किन्तु जहा तक नैतिकता तथा सदाचार के प्रसार का प्रश्न है, हमारा समाज से पूरा सम्बन्ध है। जैन शास्त्रो मे चार प्रकार के मनुष्य बतलाये गये है, १ स्वानुकम्पी—अपने ही कल्याण का प्रयत्न करने वाले, २ परानुकम्पी—केवल दूसरो का कल्याण करने वाले, ३ उभयानुकम्पी—अपने व दूसरे दोनो के कल्याण का प्रयत्न करने वाले, ४ नो उभयानुकम्पी—अपने व दूसरे किसी के भी कल्याण का प्रयत्न न करने वाले। हमारा समावेश तीसरे प्रकार में होता है। अर्थात् हम उभयानुकम्पी है। हम अपनी साधना भी करेंगे और समाज मे जो विषम वातावरण बनता है, उसका निराकरण भी। हम समाज-निरपेक्ष इसी माने मे कहे जा सकते है कि समाज को हमारी व्यवस्थाओ की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। नैतिक विकास का दायित्व हमारे पर इसलिए भी आ जाता है कि अन्ततोगत्वा समाज-व्यवस्था का मापदण्ड भी धर्म और नैतिकता ही है और

उसके सच्चे ग्राहक साधु ही होते हैं।

लोगों को हम नैतिक जीवन बनाने की प्रेरणा देते हैं। हमारा यह कार्य उपादान न होकर निमित्त ही है फिर भी हमें तो उसमें अपना काम मिल ही जाता है। जिस प्रकार दो व्यक्ति वस्तु बेचने व खरीदने वाले होते हैं। एक व्यक्ति बीच में होता है जिसे दलाल कहा जाता है। लेने व बेचने वालों में किस को लाभ या हानि होती है, दलाल का उससे कोई सम्बन्ध नहीं होता। वह तो उन दोनों का परस्पर सौदा करा देता है। यदि वह सौदा हो जाता है तो उसे अपना पारिश्रमिक मिल जाता है और नहीं होता है तो उसे कुछ भी नहीं मिलता। पर हमारी दलाली इससे भिन्न है। माल बिके या न बिके कोई व्रत-ग्रहण करे या न करे हमें तो अपनी दलाली (अनुभूति का लाभ) मिल ही जाता है। स्वयं तरना और लोगों को तारना हमारा कार्य है। हमें तो नैतिकता के प्रचार के लिए पुरुषार्थ करना है लोग चाहे उसका उपयोग करें या न करें।

न भवति धर्मः श्रोतुर्वक्तु सर्वकान्ततो हितश्रवणात् ।
ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्ध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ।

हित-श्रवण मात्र से ही कोई श्रोता धर्मिष्ठ नहीं हो जाता किन्तु वक्ता यदि अनुग्रह बुद्धि से बोल रहा है तो वह अपने आपको धर्म के निकट पाता है। यही बात जनता के और हमारे बीच में है। हम अपना सत्काम समझ कर जनता को प्रेरणा देते हैं। जनता यदि उसे स्वीकार करती है तो बहुत सुन्दर है और न भी करे तो हमारी उसमें कोई क्षति नहीं है।

प्रश्न एक सामने आता है कि उपदेशों का स्थायी असर क्यों नहीं होता? भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहां आत्मा-परमात्मा स्वर्ग-नरक पुण्य-पाप व धर्म-कर्म की बातें अधिक होती हैं और यहां के निवासी ही नैतिकता से अधिक कोरे पाये जाते हैं। उत्तर भी स्पष्ट है। धर्म जब व्यवहार को छोड़कर दर्शन के क्षेत्र में अतिशय प्रवेश पा जाता है तब ये सारी समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। फिर भारतवर्ष या अन्य देश का कोई विशेष प्रश्न ही नहीं रह जाता। दूसरा पहलू इसका यह भी है कि धर्म को जब केवल उपासना में ही सीमित कर दिया जाता है तो उपरोक्त प्रश्न सहज ही उभर जाता है पर उसके

लिए उपासना और जीवन के प्रत्येक पहलू का समन्वय होना आवश्यक है। इसके साथ यह पहलू भी नही भुलाया जा सकता कि धर्मानुष्ठान व्यक्ति चौबीस घण्टे मे केवल एक या दो घण्टे ही करता है। शेष बाईस या तेईस घण्टे तो दुनियादारी मे ही बीतते है। आज की दुनियादारी भी किस तरह की घिनौनी है, यह किसी से छिपा नही है। व्यक्ति अपने मे धार्मिक सम्बल जुटाता है, पर वह कुछ एक ही कदम आगे चल पाता है और दुनियादारी की फिसलन उसे अपने सकल्प से इतस्तत कर देती है। सामाजिक व व्यापारिक तथा अन्य परिस्थितिया बहुत बार नैतिक सकल्प लेकर चलने वाले व्यक्ति को भी इस तरह बाधित कर देती है कि सकल्प तोडने या आजीविका के उस क्षेत्र से सदा के लिये हट जाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा म र्ग उसके समक्ष रह ही नही जाता। आजीविका के साधन स्वरूप उस क्षेत्र से वह हटने के लिये इसलिय तैयार नही होता कि उसमे उसका सारा भविष्य अन्धकार पूर्ण दिखलाई देने लगता है। अत वह भी इसी निर्णय पर पहु चता है कि जैसे सब, वैसा मै। सबका भला तो मेरा भला और सबका बुरा तो मेरा भी। इससे वह अपने सकल्प से विचलित हो उठता है, किन्तु कुछ एक व्यक्ति ऐसे भी होते है, जो अपने दृढ विश्वास के आधार पर समाज-व्यवस्था व चालू परम्पराओ को भी बदलने की क्षमता रखते है। यदि ऐसा न होता तो समाज की धूरी स्थिर भी नही रह पाती और मनुष्य नीचे किस सतह पर पहु च गया होता, यह भी कल्पना नही की जा सकती। आज भी यदि मनुष्य मनुष्य के नाम से ही पुकारा जाता है तो उसका कारण भी यही है कि उसमे पशुत्व अधिक मात्रा में नही है। अहिंसा के आधार पर यदि वह अपनी समस्याओ का समाधान चाहता है तो उसका विश्वास अभी तक उसी पर स्थिर है और इससे यही सकेत मिलता है कि उपदेशो का मूर्तस्वरूप विद्यमान है। भारत मे आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक आदि की बातें अधिक होती रही है। इसी का ही तो परिमाण है कि भारतवासी अपनी बडी से बडी समस्या के समाधान मे भी आध्यात्मिक पद्धतियो का अवलम्बन करना ही अच्छा समझते हैं। स्वराज्य जैसी विकट पहेली भी यदि अहिंसा के आधार पर हल की जा सकती है तो यह कभी भी नही माना जा सकता कि भारतीय नैतिकता के माने मे अभी तक कोरे ही है। प्रत्येक देश के अपने-अपने नैतिक

मान व संस्कृतियां हैं। भारतवर्ष भी उनमें अपनी एक मौलिक संस्कृति रखता है। दूसरे देशों की परिभाषा और भारतवर्ष की परिभाषा में अवश्य भिन्नता है और यह भिन्नता ही यह अभिव्यक्त करती है कि जीवन में आध्यात्मिकता का ही सर्वोपरि मान होना चाहिए।

: २९ :

अणुव्रत : भारतीय संस्कृति का प्रतीक

बहुधा लोग कहा करते है कि अब वह युग आ गया है जब कि पशु मानव बनने लगेंगे। पर आज तो मानव भी मानव कहा रहा है। न जाने उसकी मानवता कहा चली गई है। केवल मानव का चोगा पहनने मात्र से कोई मानव तो नही बन जाता। अणुव्रत-आन्दोलन का यही काम है कि खोई हुई मानवता वापिस लाई जाए। वे क्या मानव बनायेंगे जो स्वय चरित्र-भ्रष्ट है, जिनके जीवन मे सयम का नाम भी नही है। अणुव्रत-आन्दोलन तो चरित्र, सयम और त्याग पर टिका हुआ है। वह आज के मशीन युग मे मानव को सही रूप मे मानव बनाने की मशीन है। जो अणुव्रत के सही ढाचे मे ढल जाता है, वह तो सही मानव बन ही जाता है।

कई लोग कहते है कि अणुव्रत-आन्दोलन तो देश व समाज को शक्तिशाली बनाने का आन्दोलन है। पर मेरी कामना तो इससे भी आगे है। आन्दोलन का लक्ष्य समाज को शक्तिशाली बनाने की अपेक्षा व्यक्ति-व्यक्ति की आत्मा को शक्तिशाली बनाने का है। समाज तो फिर अपने आप शक्तिशाली बनेगा।

कुछ लोगो का यह भी कहना है कि अब जगली लोगो को ही उपदेश देना चाहिए। बात बिल्कुल ठीक है। पर मैं कहूगा कि जगलीपन जगल मे रहने मात्र से नही होता। वह तो आज जगलो से अधिक शहरो मे पाया जाता है। जगलीपन यही तो है कि नाकुछ-सी बात पर मार-पीट होती रहती है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति द्वारा पराभव होता रहता है। पर क्या आज के शहरी लोगो के बीच इस प्रकार का व्यवहार नही होता है। दूसरो के अधिकारो को हडपना, विश्वासघात व शोषण करना, एक दूसरे की आजीविका छीन लेना, किसी का दमन कर देना, बिना किसी अपराध के सहस्रो मनुष्यो का एक साथ सहार कर देना, क्या जगलीपन नही है ?

इसलिए मैं समझता हूं इस अपेक्षा से शहरों और जंगलों में कुछ भी अन्तर नहीं रह गया है। शहरी मनुष्य को उपदेश की इसलिए भी अधिक आवश्यकता है कि जंगली लोगों से तो केवल कुछ एक प्राणियों का ही अहित होता है किन्तु शहरी मनुष्य के इस तथाकथित जंगलीपन से तो मानव सृष्टि के ही विनाश की प्रतिक्षण आशंका बनी रहती है।

सारा संसार युद्ध के नाम मात्र से भयभीत होता है। मिस्र पर ब्रिटेन और फ्रांस के युद्ध का नाम सुनते ही संसार में आतंक छा गया। चारों तरफ से शान्ति की आवाजें आने लगीं। लोग कहते हैं कि रूस की धमकी से विश्व-युद्ध रुक गया पर मैं तो ऐसा नहीं मानता। वहां हिंसा की शक्ति क्षीण हो गई थी। हिंसा ने एक बार उफान खाया था और वह परिस्थितियों की प्रतिकूलता से ठण्डा पड़ गया। श्रेय चाहे किसे दे दिया जाए पर विजय आखिर अहिंसा की हुई।

अणुव्रत आन्दोलन एक नैतिक अभ्युत्थान है और यह शुद्ध भारतीय संस्कृति पर अवलम्बित है। यह प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा को शक्तिशाली बनाना चाहता है और जहां कहीं भी जंगलीपन है उसे समाप्त कर विशुद्ध मानवता का प्रतिष्ठान करना चाहता है। व्यक्ति को यह मूलभूत इकाई मानता है और अन्यान्य सभी उपकरणों को उसके सहयोगी इकाइयों को सुरक्षित व विशुद्ध रख कर ही यह विकास को विकास मानता है। इसके अभाव में विकास कहने मात्र का विकास है यह इसकी सुदृढ़ मान्यता है।

[नवम्बर १९५६ के एक प्रवचन के आधार पर]

: २० :

अणुव्रत : एक दिशा-सूचक यंत्र

जो प्रमादी है, उसको सब तरह से भय होता है। उसके चारों ओर विपत्ति के बादल मंडराते रहते हैं। जो अप्रमत्त है अप्रमादी है उसे भय नहीं होता चाहे उसके सामने भयंकर से भयंकर शक्ति भी क्यों न हो? वह हर समय उसका सामना करने के लिए तत्पर रहता है।

आज आम जनता को और विशेषत पूंजीपतियों को बहुत भय है। वे सोचते हैं कि आने वाले युग में हमारा धन, ऐश्वर्य और प्रभाव कैसे सुरक्षित रह सकेगा? उन्हें धन कमाने की उतनी चिन्ता नहीं, जितनी कि उसकी रक्षा की है। इसी भय के कारण वे चुनाव लडते हैं या अपनी ओर से दूसरों को चुनाव लडने में सहयोग देते हैं, ताकि समय-समय पर उनके द्वारा समर्थित विचार देश की प्रतिनिधि सभा में आ सकें व सरकार को भी उस ओर सोचने के लिए बाधित हो जाना पडे। किसी भी प्रकार उनका वह धन, बडी-बडी अट्टालिकाएं व सुख सुविधाएं ज्यों की त्यों सुरक्षित रह जाएं। पर आखिर सबको ही समाज के अन्दर रहना है। समाज के बिना किसी का काम नहीं चलता, अत हर एक को व्यक्तिगत चिन्ता न कर सामूहिक चिन्ता करनी चाहिए। मनुष्य आज क्या गरीबों का खून चूसता है और क्यों मानवता को कलंकित करता है। आखिर उसे खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए कपडा और रहने के लिए मकान चाहिए, वे तो पशु-पक्षियों को भी मिलते हैं। अब वह जमाना चला गया, जबकि बडी-बडी गोदामें अन्न से भरी रहती थीं और गरीब भूखों मरते थे, तिजोरियां धन से भरी रहती थीं और गरीब पैसे-पैसे के लिए तडफते थे।

जिस प्रकार समुद्र और आकाश में चलने वाले जहाज और वायुयान को निर्दिष्ट स्थान पर सकुशल पहुंचने के लिए दिशा-सूचक यंत्र की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार इस बेढंगी दुनिया में जहां चारों ओर बेईमानी और

पैगम्बरों के वचन गूंजते रहे हैं। मनुष्य को सुख और शान्ति की अपनी इच्छित मंजिल प्राप्त करने के लिए एक नैतिक दिशा-सूचक यंत्र की आवश्यकता है। अणुव्रत-आन्दोलन इसी प्रकार का एक दिशा-सूचक यंत्र है।

नेहरू की विदेशनीति जिसे आज सारा विश्व एक नजर से निहार रहा है, वहां इसी देश के वासी आपसी झगड़ों और साम्प्रदायिकता को उभारने में लगे रहें यह कितनी बुरी बात है। यही बात आज अणुव्रत आन्दोलन की हो रही है। जहां इस आन्दोलन को समझने और फैलाने के लिए जैनेतर लोग और विदेशी लोग अथक प्रयत्न कर रहे हैं। वहां जैनों ने अभी तक इसे समझा भी नहीं है।

अणुव्रत-आन्दोलन और कुछ नहीं चाहता वह तो केवल दृष्टि में परिवर्तन लाना चाहता है जीवन की दिशा में एक नया मोड़ देना चाहता है। जैन दृष्टि के अनुसार कहूं तो वह मिथ्यादृष्टि (विपरीत-दृष्टिकोण) से सम्यक् दृष्टि बनाना चाहता है। अगर दृष्टि में परिवर्तन हुआ तो बुरे कार्यों से मन में ग्लानि होगी और ग्लानि से वह कार्य भी छूट जाएगा। अणुव्रत-आन्दोलन यही करना चाहता है।

[२१ अक्टूबर १९५९ को सरदारशहर (राजस्थान) में अणुव्रत प्रेरणा समारोह में प्रदत्त प्रवचन]

: ३१ .

समाज-परिवर्तन का आधार

जब से समाज का विकास हुआ, तब से समय-समय पर ये प्रश्न भी उठते रहे हैं कि वह किस रूप में रहे ? उसमें रहने वाले व्यक्तियों का जीवन कैसा हो ? सामाजिक व्यक्तियों का पारस्परिक व्यवहार कैसा हो ? और सामाजिक जीवन का सन्तोषप्रद सन्तुलन कैसे स्थापित हो ? समय समय के विशिष्ट महापुरुषों ने अपने अपने अनुभवों के आधार पर इन प्रश्नों का समाधान दिया है और समाज को सदैव गतिशील रहने की दिशा प्रदान की है। आज संक्रमण काल है। चारों ओर नाना संस्कृतियों नाना सभ्यताओं व नाना वादों का एक तुमुल-सा हो रहा है। राजनैतिक व सामाजिक स्थितयों में एक अस्थिरता सी प्रतीत हो रही है। विभिन्न वर्गों, पन्थों और विचारों में विश्वास रखने वाले व्यक्ति जन-समूह को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए प्रयत्नशील है। सबके पीछे प्रलोभनों की एक लम्बी शृंखला-सी जुड़ी हुई है। ऐसे वातावरण में मानव की विचार-शक्ति सन्तुलित नहीं रह सकती। उसमें इतना सामर्थ्य भी नहीं रह गया है कि वह ठण्डे दिमाग से सोच कर जीवन-पथ के लिए किसी दिशा का अनुगमन कर सके। ऐसी स्थिति में मैं समझता हूं समाज-परिवर्तन की दिशा क्या हो, विचारकों के लिए यह एक विचारणीय विषय बन जाता है।

समाज में जो रूढ़ियां, अनैतिकताएं और पापाचार घुस गए हैं उन सब से समाज की सुरक्षा करने के लिए व उनमें परिवर्तन करने के लिए भिन्न-भिन्न मस्तिष्क नाना दिशाएं सोच रहे हैं। कुछ तो सामज में परिवतन लाने के लिए ऐसा धक्का लगाना चाहते हैं कि एक साथ सारा परिवर्तन हो जाए। मेरी समझ में तो इसका मतलब यही आता है कि इस प्रकार एक साथ धक्का लगाने से समाज गिर पड़ेगा और उसका ध्वंस हो जाएगा। मेरी धारणा इससे भिन्न है। यह मेरी समझ में नहीं आता कि व्यक्ति को बदले बिना

समाज बदल जाएगा। आज लोग समाज में परिवर्तन चाहते हैं पर वे समाज की ईंट—व्यक्ति की ओर नहीं देखते जिसका कि सामूहिक रूप ही समाज है। समाज में परिवर्तन लाने वालों को सबसे पहले व्यक्ति को देखना चाहिए। जब तक व्यक्ति में परिवर्तन नहीं आएगा तब तक समाज में परिवर्तन आ जाए यह किसी प्रकार भी संभव नहीं लगता। मान भी लें कि किसी तरह समाज में एक साथ परिवर्तन आ भी जाए तो भी ऐसा परिवर्तन कभी चिरस्थायी नहीं बन सकेगा। कतिपय इंजेक्शनों का प्रयोग रोग को दबाकर शीघ्र ही शान्ति देने वाला होता है और जड़ी-बूटी का प्रयोग बहुत देर से। किन्तु इन्जेक्शनों द्वारा रुका हुआ रोग आगे चलकर पुनः उभर पड़ता है और बहुत सारी नई बुराइयां भी उत्पन्न कर देता है। जड़ी-बूटी के द्वारा मिटाया गया रोग धीरे-धीरे शान्त हो जाता है और शरीर को पूर्णतः स्वस्थ बना देता है। दोनों के परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। पहले में जहां दुष्परिणाम की कल्पना जुड़ी हुई है वहां दूसरे में सुपरिणाम के आसार नजर आते हैं। यही बात हठात् समाज-परिवर्तन और व्यक्ति-व्यक्ति के माध्यम से समाज परिवर्तन की प्रक्रिया पर लागू होता है। व्यक्ति-परिवर्तन के माध्यम से किया गया समाज परिवर्तन चिरस्थायी होगा और व्यक्ति-परिवर्तन की उपेक्षा कर किया गया समाज-परिवर्तन दबे हुए रोग की तरह भविष्य में अनेक समस्याओं का उत्पादक बनेगा। अतएव व्यक्ति के सुधरे बिना समाज सुधरने की कल्पना नहीं की जा सकती।

उपरोक्त मन्तव्य में विश्वास न रखने वालों की ओर से सबसे बड़ी यही आशंका उपस्थित होती है कि ऐसे एक एक व्यक्ति को बदलकर कोटि-कोटि व्यक्तियों को कब तक बदल देंगे? जहां हम वांछित समाज-परिवर्तन का स्वप्न अपनी आंखों के सामने साकार हुआ देखना चाहते हैं वहां ऐसा मानकर चलने से कैसे कब और कितनी पीढ़ियों के बाद यह प्रयोग सफल बनेगा? इसका समाधान इस प्रकार सोचना चाहिए कि किसी भी कार्य के प्रारम्भ में ही बड़ी-बड़ी विपत्तियां बाधाएं और कठिनाइयां खड़ी होती हैं। जितने अवरोध प्रारम्भ में खड़े होते हैं उतने आगे नहीं पड़ते। फिर तो क्रमशः सुविधाएं बढ़ती जाती हैं। प्रारम्भिक स्थिति को धैर्य से पार करने पर आगे का पथ सरलता से पार किया जा सकता है। कठिनता से भी यदि एक व्यक्ति

बदल गया तो जिस कार्य को एक व्यक्ति करता था, उसके बाद उसी कार्य को करने के लिए दो व्यक्ति हो गए। इस तरह क्रमशः दो से चार और चार से बढ़ते-बढ़ते थोड़े ही समय में हजार व्यक्तियों को आसानी से बदला और योजित किया जा सकता है। जिस कार्य को प्रारम्भ में एक व्यक्ति जितने समय में करता है, अब उतने समय में हजार व्यक्ति एक साथ उस कार्य को करेंगे। इस तरह यह कार्य पद्धति दिन-प्रतिदिन अपनी शक्ति को सुसंगठित बनाती हुई क्रमशः बहुत कम समय में सारे समाज का आमूल-चूल बदल सकती है। अतः परिवर्तन की मूलभित्ति व्यक्ति का परिवर्तन है। व्यक्ति का पड़ोस पर, पड़ोस का समाज पर, समाज का राष्ट्र पर और राष्ट्र का विश्व पर असर पड़े बिना कभी नहीं रहेगा। तब व्यक्ति व्यापी परिवर्तन अपने आप पड़ोसव्यापी बनकर व आगे बढ़ता हुआ अपनी असाधारण क्षमता का परिचय प्रस्तुत कर देगा।

समाज में आज दो विरोधी दिशाएं चल रही हैं। जहां स्वार्थ सिद्धि का प्रसंग आता है, वहां मनुष्य एकदम व्यक्तिवादी रहता है। वह सोचता है—मैं सुखी बनूं, मुझे धन और सुविधाएं मिलें, मेरी प्रतिष्ठा हो। इस बीच पारिवारिक, पड़ोसी, समाज या देश के अन्य व्यक्ति चाहे जिस किसी तरह पिसे जाएं, मेरे पर उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं। इसके विपरीत जहां सुधार का प्रश्न आता है, वहां मनुष्य व्यक्तिवादी नहीं रहता। वहां वह अपने आपसे सुधार प्रारम्भ करना नहीं चाहता। वह चाहता है पहले देश सुधरे, समाज सुधरे और मेरी बारी सबसे पीछे आए। यदि वहां वह व्यक्तिवादी बने, अपने आप को सुधारे तो औरों को भी सुधार की दिशा दे सकता है। आज व्यक्ति का आत्मबल विकसित नहीं है, अतः उसमें जागृत उपदेश टिकते नहीं हैं। आत्म-बल विकसित हो, इसलिए बुरी वृत्तियों का त्याग किया जाना चाहिए। अहिंसा को प्रश्रय देकर व्यक्ति 'तू' और 'मैं' के भेद का मूल जाने। यदि समता, मैत्री और एकत्व की भावना बढ़ेगी तो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी सुधर जायेंगे, इसी भावना को लेकर व्यक्ति आगे बढ़े।

३२

संगठन के मूल सूत्र

चरित्र बल

यह एक सही तथ्य है कि युवक यदि चाहें तो बहुत काम कर सकते हैं और इसके विपरीत यदि वे न चाहें (अर्थात् सहयोग से हाथ खींच लें) तो कोई भी कार्य नहीं बन सकता। इस बात के उदाहरणों की भी कोई कमी नहीं है। प्रत्येक क्रांति युवकों के सहयोग व असहयोग पर ही सफल व असफल होती रही है। वृद्धों का अपना उत्तरदायित्व रहता है किन्तु कार्य युवक ही किया करते हैं।

युवकों में जिस प्रकार शरीर-बल है उसी प्रकार यदि उनमें चरित्र-बल भी हो तो संगठन टिक सकता है। बिना चरित्र बल के कोई भी संस्था अधिक दिनों तक चल नहीं सकती। संगठन का आधार चरित्र होना चाहिए, यह मेरा निश्चित मत है। जहां चरित्र की असमानता होगी वहां एकता हो ही कैसे सकती है? जिस संस्था में जितने अधिक चरित्रवान् एवं निःस्वार्थ व्यक्ति होंगे वह संस्था उतनी ही अधिक सजीव और दीर्घायु होगी अन्यथा स्वार्थों के संघर्ष में संगठन कभी पिस कर मर जायेगा।

दृढ़ता

युवकों से मेरा बहुत सम्पर्क रहा है अतः मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता हूं। कई युवकों में तूफानी जोश आया करता है और उस समय न जाने वे क्या क्या आयोजनाएं व कल्पनाएं बना डालते हैं। दो कदम चलने पर उनका जोश ठंडा पड़ जाता है और वे शिथिल होकर बैठ जाते हैं। ऐसे युवकों से कुछ होने जाने का नहीं।

दूसरे प्रकार के युवकों में शांति पाती है लेकिन वे स्थायी रूप में धीरे धीरे काम करते हैं। वे एक साथ शोरगुल नहीं मचाते। अपनी शक्ति और स्थिति को अच्छी तरह देखकर काम करते रहते हैं। ऐसे युवक अन्ततोगत्वा बहुधा सफल होते भी देखे जाते हैं।

चरित्र-शुद्धि

चरित्र न तो किमी दूसरी जगह मे आता है और न खरीदा ही जा सकता है। वह अपने आप मे ही है और स्वय ही उसका विकाम किया जा सकता है। सम्पर्क से प्रेरणा अवश्य मिल सकती है। वह सम्पर्क चरित्रवान् पुरुप का ही होना चाहिए। चरित्रवान् के सम्पक मे रहने से चरित्र की शुद्धि हो सकती है। साधुओ से वढकर और कौन अधिक चरित्रवान् हो सकता है अत यदि किमी को अपना चरित्र समुन्नत करना है तो साधुओ का अधिकाधिक सम्पर्क होना चाहिए।

चरित्र-शुद्धि का तात्पर्य है, सर्वथा अहिसक वन जाना। पर यदि कोई सवथा अहिसक न वन सके तो कम से कम निरर्थक हिमा को तो छोडे। पूर्ण ब्रह्मचारी न वन मके तो अमर्यादित व्यभिचार का तो परित्याग करे। इस प्रकार सदृश आचार से सगठन की नीव जम जाती है। सघे शक्ति कलौ युगे—इस कहावत के अनुमार सगठन मे वहुत वल आ जाता है और उसके प्रभाव से वडे वडे कठिन कार्य भी सरल बन जाते हैं।

एकतन्त्र

प्रश्न सामने आता है कि मगठन का सचालन कैसे हो ? इस विपय मे मरा तो स्पष्ट मत है कि एकतन्त्रीय सगठन ही सवसे अधिक सफल हो सकता है। जहा जनतन्त्र है वहा भी वास्तव मे एकतत्र ही रहता है। प्रमुख रूप से वहा भी कोई न कोई एक ही नेता या पदाधिकारी होता है। यदि सारे ही नेता वन जाए और अपने-अपने राग आलापने लगें तो उम सस्था का चलना मुश्किल हो जाएगा। नीतिकारो ने कहा भी है —

> वहवो यत्र नेतार सर्वे पण्डितमानिन।
> सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति ॥

और भी कहा गया है —

> नहि पति, बहु पति, निबल पति,
> पति कुमार, पति नाथ।
> और पुरन की कहा चली
> सुरपुर होत उजाड़ ॥

इस विषय में उल्लेखनीय उदाहरण तेरापंथ का लिया जा सकता है। यहाँ एक गुरु का ही आदेश चलता है। गुरु के अनुशासन में सारे साधु-साध्वियाँ रहते हैं। सभी साधुओं को अपनी-अपनी योग्यता बढ़ाने का पूर्ण अवकाश मिलता है। अपने प्रतिभा-बल से उच्चकोटि के विचारक विद्वान् व साधक हो जाते हैं। संगठन की सीमा में फिर भी वे महत्त्व गुरु को ही देंगे। अपने अपने विचारों का आग्रह नहीं करेंगे। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी शिक्षा दिया करते थे कि साधु-साध्वियाँ संघ में अधिक से अधिक योग्य बनें पर संगठन का आधार गुरु की आज्ञा ही हो। एकतन्त्रीय प्रणाली रहेगी तब ही संघ सुचारु रूप से चल सकेगा। संगठन में अपने आपको महत्त्व नहीं दिया जाता। वहाँ अपने अहं को गौण करना होता है। वहाँ कोई यह नहीं कहेगा कि मैं बड़ा हूँ। सभी का एक ही नारा होगा कि तुम बड़े हो। ज्योंही अपने आपको अधिक महत्त्व देने की भावना जगी त्योंही फूट पड़े बिना न रहेगी क्योंकि अहं वृत्ति में न्याय नहीं देखा जाता। वहाँ तो यही सोचा जाता है कि किसी भी प्रकार से मेरा अहं सुरक्षित रहे। उसके लिए जैसे ही साधन उपलब्ध होंगे अहंभावी मनुष्य उनके प्रयोग करने में कभी संकोच नहीं करेगा। इससे दूसरों में असन्तोष पैदा होगा और उस असन्तोष की भावना से मनमुटाव बढ़ेगा। फलतः सब अव्यवस्थित हो जाएगा।

स्वार्थहीनता

यह भी आवश्यक है कि संघ के नियन्ता निःस्वार्थ हों। यदि उनमें स्वार्थ आ गया तो न तो उनका नेतृत्व ही रहेगा और न संघ ही। इसलिए एकतन्त्रीय शासन में निःस्वार्थ नेता का होना सबसे अधिक आवश्यक है। उन्हें प्रत्येक आदेश देते समय यह विचार रखना होगा कि इसमें किसी व्यक्ति विशेष का स्वार्थ न रहकर सारे संघ का कल्याण हो। इस प्रकार उसमें व्यक्ति को विशेष महत्त्व न देकर संघ को अधिक महत्त्व मिलेगा। जिससे संघीय भावना विशेष और पनपेगी और संगठन अक्षुण्ण रूप से चलता रहेगा। अगर संचालन में चंचलता आ जाएगी तो 'पंचों में बड़बो' वाली कहावत सिद्ध हो जाती है। कई-कई पंच ऐसे होते हैं जो नाके भी सरकाते हैं। सारा काम तय हो जाने पर भी आखिर में वे एक ऐसी बात कह देते हैं कि जिससे सारे किए हुए निर्णयों पर पानी फिर जाता है। काम निपट नहीं पाता और ऊपर से वे

कहते है—अरे यह सारा काम कैसे बिगड गया ? ऐसे सचालको से सघ कभी नही चल सकता, उन्हें तो बिलकुल सरल और निस्वार्थ होना चाहिए।

योग्य मार्ग-दर्शन

युवको मे यदि सगठन की सच्ची तडफ है तो उन्हे युवको और बुजुर्गों के बीच वाली खाई को पाट देना चाहिए। मैने प्राय यह देखा है कि युवक-दिमाग और बुजुर्ग-दिमाग आपस मे मिलते नही है। युवको मे नया खून होता है, अत उनका दिमाग न जाने किस तेजी से बढना चाहता है ? किन्तु यह निश्चित है कि इस प्रकार युवक सफल नही हो सकेंगे। बुजुर्ग लोगो के सामने से जमाना गुजरा हुआ होता है, अत उससे उन्हे बहुत से अनुभव मिले हुए होते है, पर उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण हुई होती है। युवको मे शारीरिक शक्ति होती है, पर वे अनुभवी कम होते है, अत वे पुन पुन स्खलित हो जाते है। युवक बुजुर्गो के अनुभवो से लाभ उठाकर ही आगे बढ सकते है। युवको और बुड्ढो का सहयोग अन्धे और पगु का सा है। अन्धा देख नही सकता पगु चल नही सकता। पर यदि अन्धा अपने कन्धो पर पगु को बिठाले तो दोनो की गाडी ठीक प्रकार से चल सकती है। पगु स्वय बैठ नही, पर अन्धा स्वय अपने कन्धो पर उसे बिठाले, तब ही काम चल सकता है। अत युवक वृद्धो के अनुभवो का लाभ उठाकर अगर वृद्धो और युवको के बीच की खाई को पाट कर आगे बढेंगे तो सगठन के कार्य मे सफलता मिलना पूर्णत सम्भव है।

३२ ।

अर्थ समस्याओं का समाधान नहीं

आज देश में आचार की बहुत अधिक आवश्यकता है। इसके बिना देश दरिद्र है। पैसा नहीं होने से ही कोई दरिद्र नहीं हो जाता। वास्तव में तो दरिद्रता अनाचार ही है। यदि पैसा नहीं होने से ही कोई दरिद्र हो जाता तो सब से बड़े दरिद्र तो साधु होते। पर उनके सामने तो सम्राटों के भी सर झुकते हैं। अतः वे दरिद्र कैसे? आज मनुष्य का मूल्यांकन पैसे से हो रहा है यह उचित नहीं है। मनुष्य सही स्थिति में सोचे। तो उसे यह समझ में आ जायेगा कि वह सबसे बड़ी भारी भूल की है पर आज कहां किसे जाये? आज तो सभी यह सोचते हैं कि पैसा बड़ा है। एक राज्यसभा की बात है। एक बार उसके सारे सदस्यों ने शराब पी ली। सारे ही सदस्य नशे में झूमने लगे। केवल मंत्री और राजा दो ही ऐसे थे जो उस समय नशे में नहीं थे। दोनों ने ही सदस्यों को बहुत समझाया पर नशे की हालत में उन पर क्या असर पड़ने वाला था? उल्टे वे लोग नशे में अधिक पागल होते गये और जोर जोर से नाचने व गाने लगे। नशे का वेग यहां तक बढ़ गया कि उन्होंने अपने कपड़े भी उतार दिये और नाचते-कूदते राजा तथा मन्त्री की ओर दौड़े। दोनों ने उन्हें फिर समझाया पर असर उल्टा ही हुआ। उन्होंने सोचा अब और नहीं है। यदि और उपदेश दिया जायेगा तो जान पर आ बनेगी। उन्होंने भी कपड़े उतार दिये और उनके साथ ही नाचने-गाने लगे। आज भी ऐसी ही स्थिति है। सारे लोग पैसे के पीछे पागल से दौड़ रहे हैं। कुछ लोग उन्हें समझाते भी हैं पर उनकी कोई सुनता नहीं। उल्टे कई लोग तो उन्हें प्रतिकूलभाषी तक कह देते हैं पर समझदार लोग इस बहुमत के भी चक्कर में पड़ने वाले नहीं हैं। उन्हें सत्य पर विश्वास है। आखिर नशा उतरने पर संसार को इसी तथ्य पर आना पड़ेगा इसमें कोई सन्देह नहीं।

अर्थ मे अनेक समस्याएं पनपती हैं। यह सब प्रत्यक्ष है। जिसकी जड़ ही समस्या है, उसमें से समाधान कहां से आयेगा ? किसी समय एक बाबा घूमते-फिरते रेगिस्तान के जंगल में पड़ गये। उन्हें बड़े जोर से भूख लगी। वहां खाने को क्या मिलता ? आखिर ढूंढते-ढूंढते उन्हें एक तुम्बे की बेल नजर आई। उस पर फल देखकर उन्होंने सोचा, सम्भवत यह खाने का ही फल है। भूखे तो थे ही। झट फल तोड़ लिया और खाने लगे। पर एक टुकड़ा मुंह में रखते ही मुंह खारा हो गया। उन्होंने सोचा फल खारा है, शायद पत्ते मीठे होंगे, अतः पत्ते तोड़ कर खाये। वे और भी खारे थे। टहनी तोड़ कर मुंह में डाली, पर वह भी कम खारी नहीं थी। अन्त में उन्होंने उस बेल को उखाड़ कर उसकी जड़ का थोड़ा सा चखा पर उसने तो सबको ही मात कर दिया। वह तो हलाहल ही थी। उनकी समझ में आया कि जिसकी जड़ ही कड़वी है, उसकी टहनी, पत्ते और फल मीठे कहां से हों ? इसी प्रकार अर्थ स्वयं यदि समस्या है तो उसमें से समाधान कैसे आयेगा। अतः आज नहीं तो कल, अन्त में संसार को अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा कि अर्थ में समस्याओं का हल नहीं है। समस्याओं का हल संयम से ही होगा—आचार से ही होगा।

३४

सब धर्मों का नवनीत

अणुव्रत-आन्दोलन जीवन की मूल भित्ति को सुदृढ़ बनाना चाहता है। पारस्परिक द्रोह और असद्भावना के स्थान पर प्रेम भ्रातृत्व और सद्भावना का संचार कर जीवन में एक नई शक्ति भरना चाहता है। इसका अनुगमन करने वाला स्वयं आत्मतुष्टि के मधुर रस का आस्वादन करेगा। सबसे पहले लाभ उसे स्वयं है इसलिए इन आदर्शों को अपनाना किसी पर कोई एहसान नहीं है। यह तो व्यक्ति-व्यक्ति का अपना काम है जिसे करने पर उनको स्वयं लाभ मिलेगा। यह व्यक्ति के दैनिक व्यवहार को परिमार्जित और परिष्कृत करने का एक सफल साधन है। मानव का दैनन्दिन व्यवहार सात्त्विकता शुद्धता और निर्मलता लिये हुए हो यह जीवन की पहली जरूरत है। दैनिक व्यवहार यदि क्लेश कदाग्रह आदि मल से गन्दा बना हो तो ऊंची ऊंची बातें बनाने से क्या लाभ ? यह धर्म के उन मौलिक सर्वसम्मत आदर्शों को लेकर चलता है जिनका प्रतिपालन व्यक्ति को धर्म की ऊंची आराधना के योग्य बनाता है।

आन्दोलन के प्रवर्तन में यह सन्देह करना भूल होगी कि छोटे छोटे व्रतों का समर्थन कर ऊंची तपस्या और आदर्श साधना का निरोध किया गया है। ऊंची तपस्या व आदर्श साधना से कौन किसको रोक सकता है ? यह तो प्रसन्नता की ही बात है कि मनुष्य अपने जीवन को जितना ले जा सके धर्म और तपस्या की ऊंची आराधना में ले जाए। अणुव्रत-आन्दोलन तो व्यक्ति को उस विशाल साधना के योग्य बनाना चाहता है।

अणुव्रत-आन्दोलन के प्रारम्भ काल से ही कठिनाइयां भी सामने आने लगीं। धर्माचार्य इस तरह का कार्य करते हैं ये व्यंग भी मैंने सुने। मैंने सोचा जो काम मैं कर रहा हूं जो मार्ग मैंने लिया है यदि वह अनुचित

नही है, शुद्ध है, निर्दोष है, मुझे उस पर चलना चाहिए। मै चला। विरोध को मै लाभकारी समझता हू, क्योकि वह व्यक्ति को जागरूक रखता है। मुझे इस मे बड़ा आनन्द आता है। मुझे यह प्रकट करते हुए सन्तोष है कि अणुव्रत-आन्दोलन की जड़ें क्रमश मजबूत होती जा रही है।

अणुव्रत-आन्दोलन सब धर्मों का नवनीत है। क्या कोई भी धर्म शील, सदाचार, शौच और सद्भावना का विरोध करेगा ? अणुव्रत आन्दोलन धर्म के इन ऊचे आदर्शों को सरलता से हृदयगम कर जीवन व्यापी बनाना चाहता है। नई शिक्षण प्रणाली के अनुसार चलने वाले बाल-मन्दिरो मे जैसे बच्चो को बिना आयास के हसते-खेलते शिक्षण दिया जाता है, उनको यह महसूस नही होने पाता कि हमसे पढाई कराई जा रही है, उसी तरह अणुव्रत-आन्दोलन धर्म के ऊचे तत्त्वो को जीवन व्यवहार मे सरलता और सहज भाव से जोडना चाहता है कि वे भार रूप न रहे और व्यक्ति के जीवन का हर पक्ष सदाचार के बुनियादी नियमो से सम्बद्ध हो जाए।

[११ मार्च, १९५६ अजमेर (राजस्थान) मे प्रदत्त प्रवचन के आधार पर]

३५

अहिंसक समाज व्यवस्था

आज अशान्ति का बोलबाला है। अतः यह सोचना है कि इसका मूल कारण क्या है? क्योंकि जैसा मूल में होगा वैसा ही ऊपर आएगा। अशान्ति आज ऊपर आ रही है। जरूर इसके मूल में कुछ है। अतः हमें मूल को ही खोजना है। जब तक उसे नहीं पकड़ा जाता तब तक अशान्ति मिट नहीं सकती। अशान्ति की जड़ है — हिंसा। जड़ में जब हिंसा है, दुर्भावना है, द्वेष है तब ऊपर अहिंसा, सद्भावना और प्रेम कैसे आ सकता है? अतः शान्ति यदि अभिप्रेत है तो अहिंसा को अपनाना पड़ेगा और इसीलिए अहिंसक समाज की कल्पना सामने आती है।

व्यक्ति और समाज

सच है कि अहिंसा का प्रयोग-स्थल व्यक्ति ही है। यदि व्यक्ति अहिंसक बन सकता है तो समाज या राष्ट्र भी अहिंसक क्यों नहीं बन सकते। समाज और राष्ट्र आखिर व्यक्ति से अलग तो कुछ है ही नहीं। अतः व्यक्ति को अहिंसक बनाने के साथ-साथ उसके व्यापक रूप समाज को भी अहिंसा की भावना से अनुप्राणित करना होगा। तब ही शान्ति का मार्ग मिल सकेगा पर हमें अतिकल्पना में भी नहीं जाना है क्योंकि उससे कभी-कभी निराशा भी हो सकती है। सारा समाज अहिंसक बन जाए यह न तो कभी सम्भव हुआ है और न आज है भी। यद्यपि समाज में द्वेष, मद, मोह, लोभ न रहें यह आवश्यक है, पर जब तक संसार में प्राणी रहेंगे तब तक उनका सर्वथा उन्मूलन होना असम्भव-सा ही है। इसलिए कल्पना वैसी ही करनी चाहिए जो सम्भव हो।

दृष्टिकोण सही हो

हम यह मान कर चलते हैं कि प्रयत्न किया जाए तो कुछ प्राणी अहिंसक

बन सकते है। पर वह कुछ भी नाकुछ जैसा ही है। सम्पूर्ण अहिंसक तो बहुत ही थोडे लोग बन सकेंगे। अत हम इस कल्पना को भी छोड दें। सबसे पहले जन-जन के मन मे जो अतिभोग, अतिपरिग्रह तथा अतिहिंसा के भाव आ गए है, उन्हे मिटाने का प्रयत्न करें।

आज जीवन का साध्य ही गलत हो गया है। अधिकतर लोगो ने भोग और परिग्रह का ही अपना साध्य मान लिया है। यह सच है कि हिंसा और परिग्रह के बिना गृहस्थ का जीवन चल नही सकता। ठीक उसी तरह जैसे बिना पटरी के इजन नही चल सकता, पर यह साध्य नही हो सकता। अत सबसे पहले अपने दृष्टिकोण को ठीक करने की आवश्यकता है।

एक भाई आया और कहने लगा—जीवन के लिए जो आवश्यक कार्य है, मै उन्हे अहिंसा ही मानता हू। फिर उसने गीता का उदाहरण दिया। कहने लगा—गीता मे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लडने के लिए प्रेरित किया है। वह यदि हिंसा होती तो श्रीकृष्ण ऐसा कैसे कहते। मैने कहा—है तो वह हिंसा ही। यह जरूर है कि वह हिंसा उस समय आवश्यक हो गई थी। उसके बिना वहा कोई दूसरा चारा नही था। अन्याय और दुष्टता को दबाने के लिए उन्होने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित किया था। पर हिंसा अहिंसा कैसे हो सकती है? आज भी इसी प्रश्न को सब पहले लेना है। आज जीवन का लक्ष्य ही गलत हो गया है। लोग किसी प्रकार से रुपये कमाना ही अपना लक्ष्य मानने लगे है, पर यह गलत दृष्टिकोण है। इसे बदलना होगा। यही अहिंसक समाज-रचना का पहला कदम होगा।

अहिंसक समाज के चार मानदण्ड

वर्तमान अशान्ति की जड हिंसा मे है। वह विविधमुखी होकर अनेक मार्गों से बाहर निकल आती है। उसका पहला कारण है—ममत्व,

दूसरा कारण है—इच्छाओ का विस्तार,

तीसरा कारण—साम्प्रदायिक आग्रह,

चौथा—बडप्पन की स्पर्धा।

यद्यपि इसके और भी अनेक कारण है, पर मैने अभी चार कारण ही गिनाये हैं। ये चार कारण मिट जाते है तो अहिंसक समाज की परिकल्पना

स्वयं सामने आ जाती है। इस दृष्टि से अहिंसक समाज के भी चार मानदण्ड होंगे—

पहला—सर्व प्राणियों में आत्मतुल्य की भावना

दूसरा—इच्छा परिमाण

तीसरा—साम्प्रदायिक समभाव

चौथा—बड़प्पन की भावना का अन्त।

ये चार बातें यदि समाज में आ जाती हैं तो समाज स्वयं अहिंसा के मार्ग पर चल पड़ेगा।

यद्यपि आरम्भ और परिग्रह को एक गृहस्थ सर्वथा नहीं छोड़ सकता पर वह महारम्भ और महापरिग्रह को तो छोड़े। गृहस्थ के पास यदि कुछ भी न रहे तो वह सुखी नहीं रह सकता और ज्यादा हो जाए तो भी सुखी नहीं रह सकता। उसका मार्ग मध्यम मार्ग है। उसके पास कुछ हो यह मेरी भाषा नहीं है। मेरा इष्ट है—उसकी भावना अल्पारम्भ की ओर रहे, उसमें संकोच और नियन्त्रण रहे। इससे व्यक्ति भी संकट में नहीं आता और समाज का काम भी चल जाता है। क्योंकि एक व्यक्ति महापरिग्रह की ओर मुड़ता है तो स्वभावतः अन्य व्यक्तियों का शोषण तो होगा ही। यदि एक व्यक्ति १० व्यक्तियों की रसोई अकेला समेट ले तो शेष व्यक्तियों को भूखा रहना ही पड़ेगा।

सम विभाग

तेरापंथ संघ में यह विधान है कि यदि १० प्याले पानी के आए और १० साधु ही पानी पीने वाले हैं तो एक-एक साधु एक-एक प्याला पानी पीकर रह जाएगा। दूसरों के विभाग का पानी पीने का उसे कोई अधिकार नहीं है। यदि कोई साधु इस कानून का उल्लंघन कर देता है तो उसे कड़ा प्रायश्चित्त आता है। एक बार ऐसा ही हुआ। पानी कम मिला था और पीने वाले साधु अधिक थे। अतः अग्रगण्य साधु ने आदेश दिया कि सब साधु पानी माप-माप कर पीयें। एक साधु आए और बिना मापे पानी पीने लगे। अग्रगण्य ने पूछा—पानी बिना मापे कैसे पीया? उसने उत्तर दिया—प्यास लगी थी इसलिए। पर प्यास तो सभी को लगी थी तुमने अकेले ही सारा पानी कैसे पी लिया?

उनसे कोई उत्तर देते नही बना और न ही उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। फलत उन्हे सघ से अलग कर दिया गया। इसी प्रकार एक व्यक्ति यदि महापरिग्रही होता है तो परोक्षत वह दूसरो का शोषक तो हो ही जाता है। अत अहिंसक समाज मे महापरिग्रही व्यक्ति को स्थान नही मिल सकता।

सघर्ष का मूल

मजदूर चाहते है—हमे काम तो थोडा करना पडे और वेतन अधिक मिल जाए। मिल मालिक चाहते हैं—मजदूरो से काम तो ज्यादा लिया जाए और वेतन कम दिया जाए। बोनस भी जहा तक बन सके, नही दिया जाए। यहा से पारस्परिक विरोध का सूत्रपात होता है, हडताले होती है। आखिर वैमनस्य बढ जाता है और दोनो को ही हानि उठानी पडती है। वे तो लडते है सो लडते है, पर देश का भी उससे भला नही होता है। जनता भी बीच मे पिस जाती है। इस प्रकार लाभ किसी को नही होता और खाइयाँ और चौडी हो जाती है।

अहिंसक समाज का आधार

आज प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक परिग्रह के सग्रह मे जुटा हुआ है। ऐसी परिस्थिति मे अहिंसा की वृत्ति पनपे भी तो कैसे ? वह तो तभी पनपेगी जब सुलस जैसी वृत्ति लोगो के हृदय मे जगेगी। सुलस एक कसाई का पुत्र था। उसका पिता प्रतिदिन ५०० भैंसे मारा करता था। अत उसका बचपन अत्यन्त हिंसक प्रवृत्तियो मे गुजरा, पर उसे हिंसा से बडी घृणा थी। वह किसी प्राणी का वध नही करना चाहता था। जब पिता मरणासन्न हुआ तो उसने सुलस को अपने पास बुलाया और कहने लगा—पुत्र ! क्या तुम मेरी एक बात मानोगे ? उसने उत्तर दिया—जरूर। तो मेरी मृत्यु के बाद गृहपति का उत्तरदायित्व तुम्हे ही सम्भालना होगा। सुलस ने उसे सहष स्वीकार कर लिया।

पिता की मृत्यु के कुछ दिन बाद एक दिन सभी सगे सम्बन्धी एकत्रित हुए और उसे गृहपति का भार सम्भलाने लगे। वहा एक विचित्र ही दृश्य उपस्थित हो गया। क्योकि गृहपति का भार सम्भालने की रस्म के अनुसार सुलस को एक भैंसे का वध करना आवश्यक था। पर वह ऐसा कर नहीं

सकता था। सम्बन्धियों ने उसे बहुत समझाया पर वह अपने निश्चय से जरा भी विचलित नहीं हुआ। अन्तत पिता की आज्ञा का प्रश्न आया। सम्बन्धी कहने लगे—तुम्हें पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए आज कृपाण चलानी आवश्यक है। तुम उससे बच नहीं सकते। उसने उन्हें बहुत समझाया पर कोई उसकी बात मानने को तैयार नहीं हुआ। आखिर सुलस को एक उपाय सूझा। उसने पूछा—क्या आज मुझे कृपाण चलाना आवश्यक ही है? सबने कहा—हां। उसने कृपाण अपने हाथ में ली और उसे अपने पैर पर ही मारने लगा। सभी लोग स्तम्भित हो गए और कहने लगे—यह क्या करते हो? उसने कहा—आप ही तो कह रहे हैं कि आज मुझे कृपाण चलाना आवश्यक है। अत आपकी आज्ञा का पालन तो करना ही होगा। किसी दूसरे प्राणी को मैं मार नहीं सकता। इससे जितनी पीड़ा मुझे होती है उससे कम पीड़ा दूसरों को भी नहीं होगी। अतः दूसरों पर कृपाण चलाने की अपेक्षा मैं अपने पर ही उसका क्यों न प्रयोग करूं? यह सुन सब लोग ठंडे पड़ गए और कहने लगे—तुम चाहे जो करो किन्तु अपने पर तो कृपाण मत चलाओ। हम तुम्हें बिना कृपाण चलाए ही गृहपति का पद देते हैं। और बिना किसी वध के उसे गृहपति का पद मिल गया।

यह है अहिंसक समाज की कल्पना का आधार। व्यक्ति-व्यक्ति यदि आज ऐसी वृत्ति अपनालें तो अपने आप अहिंसक समाज बन जाएगा। यदि अहिंसा की बात हम जाने दें। पर यदि कोई अनावश्यक हिंसा और दूसरों पर आक्रमण भी न करे, तो बहुत है। यही अणुव्रत का मार्ग है। अणुव्रती के माने ही यह है कि वह अपना सुख लेगा पर दूसरों को दुःख नहीं देगा। वह अपना पेट भरेगा पर दूसरों की रोटी नहीं छीनेगा। ऐसी परिस्थिति का जब निर्माण हो जाएगा तो स्वयं ही अहिंसा प्रधान समाज-व्यवस्था सामने आएगी।

: ३६

आत्म-शक्ति को जगाइए

अणुव्रती कितने होते है ? उनकी सख्या कितनी बढी जा रही है ? ये समाचार मेरी प्रसन्नता के कारण नही है। मैं प्रसन्न इस बात से हू कि जनता मे सयम का वातावरण बन रहा है। उनकी सख्या को भी मैं प्रदर्शन की दृष्टि से नही सुनता हू। पर मै समझता हू कि इससे दूसरे लोगो के उत्साह मे भी वृद्धि होती है। पिछले वर्ष जो अणुव्रती बने, अगर उनमे कोई कमजोरी आ गई है तो वे अपने आप मे फिर से नया उल्लास भर सकें, जो कमजोर है वे अपनी कमजोरी को मिटा सकें और जो अभी तक अनुत्साह-शील है उनमे नया स्पन्दन हो नया उत्साह आए, यही अधिवेशन और अणुव्रतियो के नाम और जगह-जगह के उत्साहशील समाचार सुनाने का उद्देश्य रहता है।

इस अवसर पर मै अणुव्रतियो से यह भी कहना चाहूगा कि यदि अपनी आत्मा की उन्नति करनी है, जीवन को ऊचा उठाना है, तो दर-दर भटकने की आवश्यकता नही है। अपनी उन्नति करने वाला कोई दूसरा नही है। उन्नति तो अन्त करण मे सोई पडी है, उसे जगाने की आवश्यकता है। उन्नति बाहर से आने वाली नही है। यह अवश्य है कि प्रेरणा बाहर से अवश्य मिल सकती है। आप महाव्रतियो से प्रेरणा लीजिए, अणुव्रतियो से प्रेरणा लीजिए, अणुव्रत सहयोगियो से प्रेरणा लीजिए और अपनी सोई हुई आत्म-शक्ति को जगाइए। उन्नति अपने आप हो जाएगी।

एक जमाना था, जब सारे ससार मे भारत की प्रतिष्ठा थी। अब वह प्रतिष्ठा उतनी नही रही है। इसे देख कर किसके हृदय मे टीस नही उठती। महावीर और बुद्ध के देश मे, जहा पुण्य चरित्र की लौ एक-सी प्रज्वलित थी, उन्ही के देशवासी आज चरित्र के लिए दूसरे देश के लोगो से माग करें,

मुझमुझ यह दुःख की बात है। इसी से मेरे दिल में दर्द हुआ और उसी के फलस्वरूप मैंने इस आन्दोलन को प्रारम्भ किया। केवल आन्दोलन खड़ा कर देने मात्र से क्या काम बन जाता है। काम तो तब ही बनेगा जब देशवासी कुछ काम करेंगे। अपने चरित्र को सुधारने की ओर आगे बढ़ेंगे।

भला चोरी न करने के लिए आन्दोलन की क्या आवश्यकता है? चोरी नहीं करने में मनुष्य को क्या कष्ट सहना पड़ता है? कष्ट तो तब सहना पड़ता है जब मनुष्य चोरी करे। चोरी करने वाले को चोरी करने से पहले और पीछे अपने बचाव के लिए अनेक कल्पनाएं करनी पड़ती हैं उनसे दुःख होता है। पर जो चोरी नहीं करता उसकी नींद में कौन बाधक बन सकता है। वह व्यापारी जो चोरबाजारी नहीं करता स्वप्न में भी इन्कमटैक्स से बेचैन नहीं होता इन्कमटैक्स की चिन्ता तो उसको है जो चोरबाजारी करता है। अतः मुझे आश्चर्य होता है कि लोग फिर भी अणुव्रतों को स्वीकार क्यों नहीं कर सकते? अणुव्रत उनके संकटों का मोचन करने वाला है उनके जीवन में सुख भरने वाला है फिर भी उससे डरते क्यों हैं?

: ३७ :

आन्दोलन के दो पक्ष

पौष्टिक खुराक

अणुव्रत-आन्दोलन लगभग सात वर्षों के बाद देशव्यापी रूप में सामने आ रहा है। जनता ने इस बात को माना है कि आन्दोलन आज के इस युग के लिए पौष्टिक खुराक है। हजारों दृश्य, चाहे वे कितने भी सुन्दर क्यों न हो आपके सामने आ जाएंगे, पर क्या उनसे आपकी भूख मिट जाएगी ? भूख तो खाद्य पदार्थ मिलने पर ही मिटेगी। इसी तरह आज देश मे जो चरित्र और नैतिकता की भूख है, उसे मिटाने के लिए सचमुच यह आन्दोलन पौष्टिक खुराक का काम करता है। अभी जब मैं दिल्ली में था, वहा के नेताओ व नागरिको ने इस बात को स्वीकार किया था कि अगर देश मे नैतिक कार्य करने वाला कोई आन्दोलन है तो वह अणुव्रत-आन्दोलन है।

यह आन्दोलन एक बहुत बडी दार्शनिक भूमि पर टिका हुआ है। जिस प्रकार एक विशाल भवन के लिए मजबूत नीव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अणुव्रत-आन्दोलन का प्रासाद सत्य और अहिंसा के विशाल और मजबूत खम्भो पर टिका हुआ है।

प्रश्न सामने आता है—अणुव्रत-आन्दोलन समाज व देश के लिए क्यो आवश्यक है ? इसके कौनसे ऐसे परिणाम है जो समाज को प्रभावित करते है। समाधान है—यह आस्तिको को उनकी आस्तिकता पर टिकाये रखता है और यदि कोई नास्तिक है तो उन्हें आस्तिक बनाता है। कोई भी समाज व देश ऐसा हो नही सकता, जहा केवल नास्तिक—बर्बर, क्रूर व शोषक व्यक्ति ही हो, पर खेद इस बात का है कि आज केवल आस्तिकवाद की दुहाई

देने वाले तो अनेक लोग मिलते हैं पर उनके जीवन आस्तिकता से कोरे होते हैं। सहज ही यह प्रश्न होता है—क्या नीति और चरित्र की बातें पुस्तकों में ही बन्द रहने की होती हैं ? यदि आस्तिकता और आस्तिकों को अच्छी तरह से समझना है या उनके वास्तविक रूप का दर्शन करना है तो धर्म जो कि पुस्तकों मन्दिरों और मठों में बन्द है उसे जीवन में लाना होगा। बिना जीवन में उतारे केवल आस्तिकवाद की दुहाई देने मात्र से क्या होने वाला है। आज दम्भी चोर बेईमान पुजारी सभी कहते हैं कि सत्य बहुत अच्छा है उसे अपने जीवन में लाना चाहिए। सुनने से ऐसा लगता है उन्हें असत्य से चिढ़-सी है। थोड़ी-सी गहराई से देखा जाए तो उनके जीवन को सत्य ने छुआ तक नहीं है। बड़े दुःख की बात यह है कि आज सत्य के साथ विश्वासघात हो रहा है। आज आस्तिक लोग भी वास्तविक आस्तिकता से परे हैं। अणुव्रत-आन्दोलन का पहला पक्ष यही है कि वह व्यक्ति को वास्तविक आस्तिकता का दिग्दर्शन कराता है।

प्रत्येक व्यक्ति अब सबसे पहले आत्म-द्रष्टा बने आत्म-निरीक्षण का पाठ सीखे। अपने आपको देखने के लिए दर्पण की आवश्यकता नहीं है। दूसरे की दो चार गलतियां भी चुभती हैं और अपने में लाख गलतियां भी नहीं के बराबर लगती हैं। आज की यह सबसे बड़ी कमी है। अणुव्रत आन्दोलन का दूसरा पक्ष है कि वह व्यक्ति को आत्म-द्रष्टा बनाता है।

कार्यकर्ता बनने की पद्धति

अणुव्रत-आन्दोलन की चर्चाएं बहुत चलीं। सब जगह इसका स्वागत हुआ पर कहीं 'दिये तले अन्धेरा' वाली यह उक्ति चरितार्थ न हो जाये। यदि कहीं ऐसा हो गया तो यह बहुत बड़ी निराशा की बात होगी। आज इसे जन-बल की आवश्यकता नहीं है। इसे आवश्यकता है—आत्मबल और पुरुषार्थ को जगाकर इसके पीछे अपने जीवन झोंक देने वाले कार्यकर्ताओं की। यह कमी अभी भी है। आप लोगों को अपने आसपास में ऐसा सुन्दर वातावरण बनाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति आन्दोलन के उद्देश्यों नियमों व कार्यों से अच्छी तरह परिचित हो जाए। यह बहुत बड़ा कार्य होगा। आपको अपने जीवन

मे इस कार्य को प्रमुख स्थान देना होगा। अपने कार्यो की सूची मे इसे भी मान लेना होगा। यदि ऐसा करेंगे तो आप स्वय कार्यकर्ता वन जाएगे।

आज यह कहने वाले बहुत से लोग मिलेंगे कि आपने अपनी इस यात्रा मे बहुत कठिन परिश्रम किया। वीस-वीस मील का लम्वा विहार किया। पर केवल इन वातो के कहने मात्र से कुछ नही होने वाला है। अगर किसी को मेरे प्रति सहानुभूति है तो मेरी जिम्मेदारी मे व मेरे कार्यो मे हाथ वटाये।

वहिनो को भी यह समझना है कि केवल प्रशसा की झडी लगा देने से कुछ नही होने वाला है। उससे हम खुश होने वाले नही है। अगर आपको कुछ करना है तो अणुव्रत-आन्दोलन के इस पथ को यथाशीघ्र अपनायें।

कार्यकर्ताओ से दो वातें

दो वातें कार्यकर्ताओ से भी कहूगा—१ अव केवल मनन, चिन्तन और विचार को छोडकर साधना मे लगें। कही विचार और मनन करते-करते प्रज्ञा कुठित न वन जाए। कार्यकर्ता वही वन सकता है, जो अपनी मस्तिष्क-शक्ति से अधिक पुरुषार्थ को काम मे लाता है।

आज अपनी भूमि उर्वर हो गई है। अव तो उसमे वीज वोने वालो की आवश्यकता है। अणुव्रत-आन्दोलन के प्रसार मे ही सत्य और अहिंसा का प्रसार है।

मै आपसे यह नही कहता कि कार्यकर्ता सव कुछ छोडकर इस कार्य मे लगें। क्योकि आखिर आप गृहस्थ है। पर कुछ समय आनन्दोलन के प्रसार मे अवश्य दें।

अणुव्रती कार्यकर्ता केवल प्रवाह मे न वह जाए। उन्हे लेभागू की नीति नही वरतनी चाहिए। यह नही कि कही से कुछ भी मिला और उसे अपना लिया। यदि कही कुछ ग्राह्य विचार मिलते है तो उन्हें लेना चाहिए, पर हर वात की नकल नही करनी चाहिए।

कायकर्ताओ ने यह अणुव्रती कार्यकर्ता शिक्षण-शिविर रखा। अगर कार्य रूप मे परिणत हुआ तो वहुत ही अच्छा है, नही तो इस पर चिन्तन हुआ, इसलिए भी अच्छा ही है।

[२ फरवरी ५७ को सरदारशहर (राजस्थान) मे अणुव्रती कार्यकर्ता शिक्षण शिविर मे प्रदत्त मगल प्रवचन]

अणुव्रत आत्म शुद्धि का साधन

उपदेश देने का अधिकारी कौन ?

यह बात सही है कि कोई भी मनुष्य किसी को उन्नत नहीं बना सकता। हमारी तो यह निश्चित मान्यता है कि स्वयं ईश्वर भी किसी को उन्नत नहीं बना सकता। यह कहकर मैं ईश्वर की अवज्ञा नहीं कर रहा हूं पर वस्तुस्थिति ही ऐसी है कि मुझे यह बताना ही पड़ेगा। यदि ईश्वर ही किसी को उन्नत या सुखी बना सकता है तो संसार में सुखी और दु:खी दोनों क्यों ? उसे तो सबको सुखी ही सुखी बनाना चाहिये था। पर संसार में अनेक दु:खी भी हैं। ईश्वर तो समदर्शी है। वह किसी को सुखी या दु:खी बनाएगा ही क्यों ? अतः स्पष्ट है कि अपने भाग्य का निर्माता मनुष्य स्वयं ही है। ईश्वर से जो प्रार्थना की जाती है उसका यह रूप भी नहीं होता है कि उससे प्रेरणा प्राप्त की जा सके। ईश-स्तुति का यदि यह सही अर्थ समझ लिया गया और उसके अनुसार आचरण किया गया तो निश्चित ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को दुनिया के समक्ष प्रस्तुत कर सकेगा। इसी प्रकार प्रवचनकार भी किसी को उन्नत कर सके यह भी सम्भव नहीं है। वे तो केवल प्रेरणा ही दे सकते हैं। उन्नत तो मनुष्य स्वयं अपने आप होता है। यह सही है कि प्रेरणा देने वाला पहले स्वयं सुधरा हुआ हो। नहीं तो फिर उसके उपदेश से प्रेरणा मिले यह कम सम्भव है।

आज बहुत से लोग कहते हैं कि हम समाज की सेवा करना चाहते हैं। यह सही है या नहीं यह तो मैं नहीं कह सकता' पर जब तक अपने जीवन को वैसा नहीं बनाया जाएगा तब तक यह कहना भी दोष है। सुधारक होना बहुत छोटी बात नहीं है पर वास्तव में सुधरा हुआ होना और भी बहुत बड़ी

बात है। इसलिए भारतवर्ष मे माना गया है कि उपदेश देने का अधिकार उन्हे ही है, जो पारदर्शी—सर्वज्ञ है। हम भी जो उपदेश देते है, वह पारदर्शियो द्वारा बताये गए तत्त्वो के आधार पर ही दे सकते है। अन्यथा हमे भी उपदेश देने का कोई अधिकार नही है।

अणुव्रत धर्म का आन्दोलन है या नही ? यह प्रश्न अनेक बार सामने आया करता है। मै इसका उत्तर दिया करता हू—यह धर्म का आन्दोलन है भी और नही भी। एक धर्माचाय के मुह से ऐसी बात सुनकर सम्भवत प्रत्येक व्यक्ति चोकेगा, पर मेरा तो सिद्धान्त ही स्याद्वाद जो ठहरा। अत इस प्रश्न का भी मुझे आपेक्षिक दृष्टिकोण मे देखना पडेगा। एक अणुव्रती यदि अहिंसक बनता है, झूठ बोलना छोडता है, अपरिग्रही बनता है तो यह धर्म ही है। दूसरी दृष्टि से यह जैन, बौद्ध, वैदिक और ईसाई आदि किसी एक धर्म विशेष का आन्दोलन नही है, अत यह धर्म का आन्दोलन नही भी है। इस दृष्टि से यह नीति का व सदाचार का आन्दोलन है।

धर्म के नाम पर

आज स्थिति कुछ दूसरी है। धर्म का नाम आते ही लाग नाक-भोह सिकोडने लग जाते है। खेद का विषय है कि जो धर्म अमृत बनकर आया था, उसे आज लोगो ने विष बना दिया है। जो धर्म मनुष्य की आत्मोन्नति का साधन बनकर आया था, उसे आज आत्म-पतन का रास्ता बना दिया गया है। इसीलिए धर्म का नाम आते ही बुद्धिजीवियो के विचार हिल उठते है। उसके कुछ कारण भी हुए है। किसी को कोई भी काम कराना हुआ, वह सीधे तो होना सम्भव नही था, अत हर काम को धर्म का जामा पहना दिया गया। धर्म के नाम पर खून की नदिया बही। धर्म के नाम पर देश का विभाजन हुआ। सती-प्रथा जैसी कुप्रथाए भी धर्म के नाम पर प्रचलित की गई। आज भी धर्म के नाम पर अनेक काम करवाए जाते हैं। यह धर्म को ठीक प्रकार से नहीं समझने का ही कारण है। बहुत से लोग आज भी यही समझते हैं—गुरु का चरणामृत पीने मात्र से ही उनका कल्याण हो जाएगा, पर वास्तव मे यह धर्म नही है। कल्याण तो तब होने वाला है, जब धर्म-

गुरुओं के द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण किया जाएगा। उन्होंने जो पथ अपनाया है उसे अपना पथ बनाया जाएगा।

धर्म के साथ यह बहुत बड़ा अन्याय हुआ है कि उसे सब प्रकार के अनिवार्य कार्यों में घसीट लिया गया। जिस कार्य को करने से अपना काम चला उसे ही धर्म मान लिया गया। यह धर्म के साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ। जो धर्म आत्म-शुद्धि का साधन था उसे जीवन चलाने का साधन मान लिया गया। व्यापक अर्थ में यह कर्तव्य था संसार के लिए आवश्यक होता है उसे भी धर्म मान लिया जाता है। उस दृष्टि से फिर हिंसा भी धर्म हो जाएगी। कौरवों और पाण्डवों का युद्ध जो धर्मयुद्ध कहलाया था वह इसका ही परिणाम था। कुछ दृष्टियों से यह परिभाषा चलती है पर वास्तव में तो आत्म-शुद्धि का साधन ही धर्म है। जहाँ तलवार चले वहाँ धर्म होना मान लेना धर्म के वास्तविक अर्थ को नहीं समझने का सूचक है।

इसी प्रकार धर्मसंघ की रक्षा में [illegible] की हिंसा को भी कई लोग क्षम्य मान लेते हैं। हिंसा आखिर हिंसा है। कैसी भी हिंसा अहिंसा नहीं हो सकती। अहिंसा का दृष्टिकोण है कि एक छोटे प्राणी की भी हिंसा न हो। इसीलिए तो साधु थोड़ी-सी हिंसा के प्रसंग पर आत्मोत्सर्ग कर देते हैं पर हिंसा नहीं करते। राजनीति में यह सब कुछ चलता है। सुविधा तो यह है कि लोग एक ही लाठी से सबको हाँकना शुरू कर देते हैं। यहाँ तक कि कई जैनाचार्यों ने भी यह कह दिया है—'चुरिज्ज चक्कवट्टी सेनामवि संघ कज्जम्मि' संघ की रक्षा के लिए भले ही चक्रवर्ती-सेना को नष्ट कर दो वह हिंसा नहीं है। यह उस युग की वाणी है जबकि धर्म-सम्प्रदायों में आपसी संघर्ष चलते थे। अपने सम्प्रदाय और जाति की रक्षा के लिए ऐसा कह दिया गया था पर यह अहिंसा की वाणी नहीं है। वास्तव में तो वह धर्म की रक्षा है ही कहाँ? हिंसा के द्वारा की जाने वाली रक्षा में अधर्म तो पहले ही हो चुका। अत उसे धर्म माना ही कैसे जाए? गांधीजी ने भी यह कहा था—अहिंसा से भले ही सौ वर्षों बाद स्वराज्य मिले यह मंजूर है पर हिंसा से यदि आज भी स्वराज्य मिलता है तो मुझे वह नहीं चाहिए। साध्य-शुद्धि व साधन-शुद्धि को मैं समान

ही महत्त्व देते थे। इसी प्रकार निर्बल की रक्षा के लिए सबल को मार देना भी धर्म नही है।

आज प्रत्येक बुद्धिवादी को यह सोचना है कि वह धर्म को बुरा नही बताए। तथाकथित धर्मात्माओ ने जिन्होने अपने स्वार्थ से धर्म को बदनाम किया, जरूर इसके कारण बने हैं। यह अपने स्वार्थ का ही परिणाम है कि कुछ लोगो ने धर्म को भी जाति विशेष मे बाध दिया है। अमुक जाति को ही धर्म का अधिकार है, यह कह कर उन्होने निश्चय ही धर्म का गला घोटा है। धर्म एक जाति मे क्या, सारी मानव जाति मे भी नही बन्धता। वह प्राणीमात्र के लिए है। क्योकि धर्म कही दूसरी जगह नही रहता। वह तो अपनी आत्मा मे ही रहता है, अत किसी को भी उससे वचित नही किया जा सकता। बन्धुओ! मुझे तभी अत्यधिक प्रसन्नता होगी, जब धर्म मे जाति-पाति के भेद-भाव को बिल्कुल मिटा दिया जाएगा। जब कोई भी मनुष्य प्रत्येक स्थान को अपना घर मानकर धर्म करने मे स्वतन्त्र होगा। अणुव्रत यही काम करना चाहता है। वह धर्म के बाह्य आवरणो को हटाकर उसके निर्मल स्वरूप को सबके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता है। उसने कुछ काम किया है और बहुत कुछ करना बाकी है। अत मै तो यही कहना चाहूगा कि प्रत्येक व्यक्ति आन्दोलन की भावना को समझे और अपने जीवन मे उतार कर उसे उत्तरोत्तर सफल बनाने का प्रयत्न करे।

३९

सुधार का सही माध्यम

संसार में रहने वाला व्यक्ति बहुकर्मी होता है। वह जहां राजनीति में पड़ता है वहां सामाजिक व धार्मिक पहलुओं को भी छूता है। छूने की अपनी अलग-अलग पद्धति होती है। कोई किसी विचार को आगे किये चलता है और कोई किसी विचार को। आखिर मन्तव्य सबका एक है—सुख-शान्ति की प्राप्ति। वह सबको अभीष्ट है और उसे पाने के लिए लोग अनेक तरह की प्रवृत्तियों का संचालन करते हैं। हमें न राजनैतिक क्षेत्र को छूना है न धार्मिक क्षेत्र को। हमारा चुना हुआ क्षेत्र आध्यात्मिक नैतिक या चारित्रिक है। गिरते हुए को उठाएं, उठाने में प्रेरक बनें मानव-मात्र के जीवन को ऊंचा उठाने के लिए कोई व्यवस्थित रूपरेखा सामने रखें। इसी भावना का मूर्त रूप अणुव्रत आन्दोलन है।

ये तीन विचार जहा नही आये है, वहा मनुष्य अपने आपको नही पहचानता। समाज सुधार के और राष्ट्र-सुधार के कानून बनते है, पर अपनी आत्मा को समझे बिना उनसे बनने का क्या है ? मैने बम्बई प्रान्त मे देखा—वहा मद्य-निषेध का कानून है, पर फिर भी वहा लोग खुलेआम शराब पीते हैं। कारण यही कि कानून बुराई छोडने के लिए जोर डालता है, किन्तु बुराई के प्रति घृणा पैदा नही करता। बुराई के प्रति घृणा का सस्कार बन जाए तो वह टिक भी नही सकती। वह आज खत्म होगी या कल खत्म होगी, आखिर खत्म होकर रहेगी। अत बुराइयो को मिटाने के लिए सस्कार-परिवर्तन या हृदय-परिवतन का प्रयास हो तो वह बुराई जड-मूल से मिट सकती है। अपने आपको समझने और पहचानने का प्रयास होगा तभी कुछ बनने का है।

युग प्रगति का है। लोग एक साथ सारी दुनिया को सुधार डालना चाहते हैं। उनके हृदय मे मगलकामना है, पर सुधार का सही माध्यम व्यक्ति-सुधार ही है। अणुव्रत-आन्दोलन व्यक्ति-सुधार को प्रमुखता देकर चलने वाला एक चरित्र-शुद्धिमूलक रचनात्मक आन्दोलन है। उदाहरण के रूप मे एक कहानी है। एक अध्यापक ने विद्यार्थियो को एक नक्शे के कई विभक्त खण्ड, जिसके एक ओर दुनिया तथा दूसरी ओर मनुष्य शरीर की आकृति अकित थी, दिया और कहा कि इसे फिर से व्यवस्थित करो। विद्यार्थी उसे जोडने के लिए दुनिया के नक्शे को ठीक करने लगे। वे दुनिया से अपरिचित ठहरे। अफ्रीका को ठीक बैठाया तो अमेरिका अव्यवस्थित हो गया और अमेरिका को ठीक किया तो एशिया अस्त-व्यस्त हो गया। अध्यापक ने सबको समझाते हुए कहा कि पहले आदमी को बनाओ, दुनिया का नक्शा स्वत बन जायेगा। विद्यार्थी आदमी के शरीर के सारे अवयवो से परिचित तो थे ही, नक्शे को शीघ्रता से व्यवस्थित किया। कागज के पीछे दुनिया का नक्शा स्वत ठीक बन गया। इस तरह विश्व के निर्माण से पहले मानव का निर्माण होगा, तभी कार्य ठोस और क्रियाशील बन सकेगा। अत अणुव्रत-आन्दोलन की गति व्यक्ति-सुधार के माध्यम से बढ़ने की है तथा उसी दिशा मे वह आगे बढ रहा है।

भारत स्वतन्त्र हुआ है। शिक्षा, कला और विज्ञान के क्षेत्र मे आशातीत विकास हो रहा है। इन क्षेत्रो मे विकास हो रहा है तो क्या आत्मा और

चरित्र के क्षेत्र में उन्नति की आवश्यकता नहीं है ? आत्मा के सुधार का अपने आप के सुधार का जहाँ प्रश्न आता है वहाँ प्रायः व्यक्ति पीछे खिसक जाता है। किन्तु यह होना नहीं चाहिये। इससे सुधार की बातें थोथी बन जाती हैं। उनका धरातल ही खिसक जाता है। निर्माण का प्रश्न तो गौण ही बन जाता है और उन पर आडम्बर छा जाता है।

सुधार के साधन व्रत हैं। व्रत में महती शक्ति है। उनका विकास हुए बिना सुख और शान्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता। क्या मैं आशा करूँ कि लोग भारतीय परम्परा के अनुसार व्रत-शक्ति को बढ़ाएंगे और अपने जीवन को विकास की ओर ले जाएंगे ?

[१९ अगस्त १९५६ को सरदारशहर (राजस्थान) में अणुव्रत प्रेरणा दिवस के उपलक्ष में प्रदत्त प्रवचन]

: ४० :

सर्वोदय और अणुव्रत

सर्वोदय और अणुव्रत दोनो ही शब्द बहुत प्राचीन है। सर्वोदय शब्द का सर्वप्रथम जैन आचार्यों ने प्रयोग किया था। आचार्य समन्तभद्र ने अपनी वीत-राग स्तुति मे भगवान को सम्बोधन करते हुए कहा है—

'सर्वापदामन्तकर निरन्त सर्वोदय तीर्थमिद तवैव'।

'हे प्रभो! सब आपत्तियो का या सबकी आपत्तियो का अन्त करने वाला यह आपका ही सर्वोदय तीर्थ है। तीर्थधाम मे आया हुआ जानकर जैसे व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित मानता है, उसी तरह यह आपका तीर्थ है।' इस प्रयोग से सर्वोदय शब्द की प्राचीनता स्पष्टत प्रमाणित होती है। अणुव्रत शब्द का उल्लेख भी जैन शास्त्रो मे स्थान-स्थान पर आया है।

दोनो शब्द पुराने है, पर दोनो का ही इस रूप मे प्रयोग नया है। पहले सर्वोदय और अणुव्रत—ये दोनो शब्द केवल एक विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते थे और आज एक विशेष्य के रूप मे प्रयोग मे आते है। पहले अणुव्रत-धर्म केवल श्रावको से सम्बन्धित था, अब वह मानव-मात्र के लिए त्याग का पथ बन गया है। शब्द वे ही हैं, पर प्रयोग मे नवीनता है।

सर्वोदय की भावना है—सब का उदय। 'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया' सब सुखी हो, सब निर्भय (स्वस्थ) हो—यह कितनी विशाल और व्यापक भावना है। किसी व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र का ही नही, बल्कि सबका बिना किसी भेदभाव के उदय हो। सबके उदय के लिए सब अग्रसर हो, फिर उदय की परिधि को सीमित क्यो किया जाए? सर्वोदय शब्द मे भी व्यापकता है। वह उदय उदय नही, जिसमे अपना उदय और दूसरो का तिरोभाव हो। वह उदय भी उदय नही, जिसमे अपना उदय भूल कर दूसरो के

ही उदय की कल्पना था। एक संस्कृत कवि ने सूर्य को सम्बोधित करते हुए कहा है—

> तिमिर महरी गुर्वीमुर्वी करोषु विकस्वरा।
> हरसु नितरां निद्रां मुद्रां मस्याद् गुणिनो गणात्।
> तदपि तरणे! तेज पुञ्जो न मे तव रोचते।
> किमपि तिरयन् ज्योतिश्चक्रं स्वजाति निशुम्भितम्।

सूर्य! तेरा यह तेज पुञ्ज किसी को रुचिकर लगता होगा पर मुझे तो यह अच्छा नहीं लगता। गहरी निशा के अन्धेर को मिटाकर भूतल को प्रकाशित करता है रात मे गहरी निद्रा मे सोये हुओ को तू जागृत करता है। तू उपकारी है पर तो भी तू मुझे अच्छा नहीं लगता। चन्द्रमा को नहीं लाखो टिमटिमाते तारो और दीपको को तू उदय होते ही अस्त कर देता है। अपनी तेज किरणो को प्रसारित कर तू अपनी जाति को नष्ट कर देता है। इसलिये सूर्य! तू मुझे अच्छा नहीं लगता।

जब तक सबकी भावनाओ का अन्त नहीं होगा तब तक सर्वोदय नहीं। सर्वोदय के सेवको का कहना है—सर्वोदय यानी अन्त्योदय—गिरे हुओ का भी उदय। उनकी दृष्टि मे सर्वोदय मे बाधक तत्त्व ये है —

१ जातिवाद
२ श्रमिको को नीचा समझने की भावना
३ हिंसा परिग्रह और परावलम्बन

१ जातिवाद—जातिवाद सर्वोदय मे इसलिए बाधक है कि उससे उच्चता और नीचता की भावना जगती है। भले ही यह परम्परा कभी अच्छी और हित कर मानी जाती रही होगी पर नीचता और उच्चता की भावना जगाने मे जातिवाद का बहुत बड़ा हाथ रहा है इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। जिस तरह पूंजीवाद का अन्त करना चाहते है, पर पूंजी का नहीं उसी तरह जातिवाद का अन्त करना चाहते है न कि जातियों का ही। तब पूंजी और जातियां केवल आवश्यकता की वस्तुमात्र रह जायेगी। ऐसा उनका कहना है और यह ठीक भी लगता है।

२ श्रम को नीचा समझने की भावना—श्रम को नीचा समझने की

भावना भी सर्वोदय मे बाधक है। बडे-बडे पूजीपति उठकर पानी भी पीना नही चाहते, क्योकि श्रम को नीचा समझा जाने लगा है। अपना काय अपने हाथ से करना भी हीनता का सूचक हो गया है। पूजीपति श्रमिको से काम लेकर उन्हें नीचा भी समझने लगे है। इससे स्पर्धा की भावना को बल मिलता है। प्रत्येक कार्य मे ईश्वर कर्तृत्ववाद की मान्यता की तरह यहा पर भी कम-वाद का अवतरण होने लगा। पूजीपतियो से झट सुनने को मिल सकता है कि धनवान् और गरीब होना तो सब अपने-अपने कम के अधीन है। यद्यपि कम-वाद भी एक सीमा तक मान्य है, पर कम करने वाला व्यक्ति स्वय ही होता है। कर्म व्यक्ति को नहीं बनाता, बल्कि व्यक्ति कम को पैदा करता है। कोई व्यक्ति गठरी सर पर रखेगा, तब गठरी सर पर आयेगी, अपने आप तो नही। नीचे कुल मे जन्मा हुआ भी लाखो व्यक्तियो का पूज्य बन सकता है। हरिकेशी मुनि चण्डाल के घर जन्मे थे, पर वे करोडो के पूज्य बने। उच्च-नीच की विवक्षा जाति के आधार पर नही, गुणवाद से होनी चाहिए। जब तक श्रम को आदर नही मिलेगा, श्रमिक को नीचा माना जायेगा तब तक सर्वोदय नही हो सकता।

३ हिंसा, परिग्रह और परावलम्बन—हिंसा, परिग्रह और परावलम्बन भी सर्वोदय मे बाधक हैं। एक दूसरे को मारने उत्तप्त करने व पीडित करने मे सर्वोदय नही है। परिग्रह से भी विषमता बढती है और परावलम्बन मे दूसरो के श्रम पर जीवित रहना पडता है। इसलिए ये तीनो सर्वोदय के बाधक है।

अणुव्रत की भावना है—सब आपदाए व्रता से मिट सकती हैं। भोग मे सब समान नही हो सकते। त्याग मे सब समान हो सकते हैं। साम्यवादी व्यवस्था मे भी भोग समान नही होते। वहा भी उनमे न्यूनाधिक्य रहता ही है। कोई व्यक्ति उपवास करना चाहता है, ब्रह्मचारी रहना चाहता है, तब दूसरे भी वैसा बनना चाह तो बन सकते है। भोग मे वैसा नही है। आत्मा से लालसा छूटे, भोग से मन हटे— यही वास्तव में व्रत का स्वरूप है। ऐसे व्रतो से सब आपत्तियो का नाश हो सकता है, ऐसा मेरा विश्वास है। लोग दान की बात करते हैं, शोषण नही छोडते। उससे बुराई का मार्ग रुकता नही है।

वृत्तियों में समानता आये बिना दान से क्या बने ? भगवत्ता का मार्ग त्याग है इसलिये दान की नहीं त्याग की वृत्तियों की आवश्यकता है। वहाँ समाज में शोषण और विलास नहीं होगा इसलिये श्रम और स्वावलम्बन अपने आप आ जायगा। वहां अभिमान की भावना नहीं होगी। इसलिये जातिवाद अपने आप मिट जायगा। वहां घृणा नहीं रहेगी इसलिए श्रमिक भी नीचा नहीं कहा जाएगा। इस तरह अणुव्रत सर्वोदय की पृष्ठभूमि है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि अणुव्रत द्वारा भूमि निर्माण होने पर सर्वोदय अपने लक्ष्य के निकट शीघ्रता से आ सकता है। अहिंसा सत्य और अपरिग्रह पर तो दोनों का बल है ही। दोनों की कार्य पद्धतियों और रूप में भेद है पर भावना और लक्ष्य दोनों का एक है। दो स्रोत हैं पर दोनों आगे जाकर एक धरातल पर मिल जाते हैं।

दोनों आन्दोलनों के कार्यकर्ताओं को दोनों विचारधाराओं का गहराई से अध्ययन करना चाहिए। आज अहिंसक शक्तियों के मिलने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। अगर वे मिलकर सहयोग की भावना से कार्य करें तो विश्व का बहुत बड़ा भला हो सकता है।